RIN No.: MPBIL/2001/5256
DAVP Code : 128101
Postal Registration No. : भोपाल/म.प्र./581/2021-2023
Publish Date : Every Month Dt. 05
Posting Date : Every Month Dt. 15
Rs. 10/-

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

वर्ष 22 अंक 04 05 दिसम्बर 2021

जगत विज़न

क्या राजनीतिक मोहरे हैं आदिवासी?

मासिक द्विभाषी पत्रिका वर्ष 22 अंक 04 05 दिसम्बर 2021

प्रेरणा स्त्रोत : स्व. श्री जगत पाठक

संपादक	विजया पाठक
कार्यकारी संपादक	समता पाठक
मध्यप्रदेश संवाददाता	अर्चना शर्मा
राजनीतिक संवाददाता	समीर शास्त्री
विशेष संवाददाता	बिन्देश्वरी पटेल
छत्तीसगढ़ ब्यूरो चीफ	मणिशंकर पाण्डेय
छत्तीसगढ़ संवाददाता	आनन्द मोहन श्रीवास्तव,
पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ	अमित राय
गोवा ब्यूरो चीफ	अजय सिंह
गुजरात ब्यूरो चीफ	गौरव सेठी
दिल्ली ब्यूरो चीफ	विजय वर्मा
पटना संवाददाता	सौरभ कुमार
उत्तरप्रदेश ब्यूरो चीफ	वेद कुमार
बुंदेलखण्ड संवाददाता	रफत खान
विधिक सलाहकार	एडवोकेट राजेश कुंसारिया

सम्पादकीय एवं विज्ञापन कार्यालय

भोपाल

एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल

मो. 98260-64596, मो. 9893014600

फोन : 0755-4299165 म.प्र. स्वत्वाधिकारी,

छत्तीसगढ़

4-विनायका विहार, रिंग रोड, रायपुर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक,

विजया पाठक द्वारा समता ग्राफिक्स

एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. द्वारा कम्पोज एवं जगत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्लाट नं. 28 सुरभि विहार बीडीए रोड भेल भोपाल से मुद्रित एवं एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित संपादक विजया पाठक। समस्त विवादों का कार्यक्षेत्र भोपाल सत्र-न्यायालय रहेगा। पत्रिका में प्रकाशित किये जाने वाले संपूर्ण आलेख एवं सामग्री की जिम्मेदारी लेखक एवं संपादक की होगी।

E-mail : jagat.vision@gmail.com

Website: www.jagatvision.in

क्या राजनीतिक मोहरे हैं आदिवासी?

(पृष्ठ क्र.-6)

- आदिवासी बाहुल्य छत्तीसगढ़ में बदहाल हैं आदिवासियों के हालात? 40
- चरम पर सत्ता-सियासत की जोर आजमाईस 44
- ममता बैनर्जी की लोकसभा चुनाव 2024 पर नजर 50
- देश को ऊर्जा साक्षरता का पाठ पढ़ायेगा मध्यप्रदेश 54
- आनंद और आस्था की अभिव्यक्ति है, जनजातीय नृत्य-संगीत 56
- 06 देशों में पर्यावरण संरक्षण की अलख जगा रहें डॉ. धर्मेन्द्र कुमार .58
- Future of the Newspapers 62

कार्टूनिस्ट की नज़र

किसान और मोदी सरकार दोनों जीते

आखिरकार केंद्र सरकार को किसानों के आगे झुकना ही पड़ गया। करीब सालभर से चल रहे किसान आंदोलन के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्र के नाम संबोधन में तीनों कृषि कानूनों को वापिस लेने की घोषणा की और अब यह संसद में पास होकर राष्ट्रापति की भी मोहर लग गई है। सरकार ने उनकी मांग मान ली और कृषि कानून रद्द कर दिए, इसके बाद अब किसानों की नई मांग उठने लगी है। अब वो एमएसपी पर कानून बनाने की मांग करने लगे हैं और आंदोलन के दौरान जिन किसानों की मौत हुई है उन्हें मुआवजा देने की मांग उठा रहे हैं। गौरतलब है कि केंद्र सरकार की हट के कारण दिल्ली की चारों बॉर्डर पर डटे किसानों में ऐसे कई किसान थे जो अपनी दो गज जमीन पर खेती कर अपना और अपने परिवार का पेट पाल रहे थे। लेकिन केंद्र सरकार के कृषि कानून बिल के कारण वो दुखी हुए और सरकार के इस फैसले के विरुद्ध दिल्ली की सड़कों पर उतरकर बीते 26 नवंबर 2020 से निरंतर संघर्ष करते दिखाई दिये। इस दौरान लगभग 700 से अधिक किसानों की किसान आंदोलन के दौरान मौत हुई है। यह मौतें मुख्य रूप से मौसम की मार, गंदगी के कारण होने वाली बीमारियों और आत्महत्या के कारण हुई हैं। उधर, भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय प्रवक्ता राकेश टिकैत ने भी खुले मंच से ये घोषणा कर दी है कि कृषि कानून रद्द किए जाने से उनका आंदोलन खत्म नहीं होने वाला, बल्कि जब सरकार एमएसपी पर कानून बना देगी उसके बाद किसान घर लौटने के लिए सोच सकते हैं। किसानों की मौजूदा मंशा को देखते हुए नहीं लगता है कि मोदी सरकार ने जिस घोषणा से यह मान लिया था कि अब किसान आंदोलन खत्म हो गया है वह मंशा पूरी होती नही दिख रही है। क्योंकि किसान संगठन सिर्फ कृषि कानून रद्द करने भर से राजी नही हो रहे हैं और उधर मोदी सरकार भी किसानों की दूसरी अन्य मांगों पर एक्शन लेने की मूड में नही दिख रही है। इसके साथ ही किसान संगठन भी बिखरे नजर आ रहे हैं। कोई संगठन सरकार के फैसले का स्वागत कर रहा है और आंदोलन खत्म करने की बात कर रहा हैं तो दूसरे संगठन अपनी और मांगों पर अड़े हुए हैं।

वर्तमान में हालात भले ही कुछ प्रदर्शित हो रहे हैं लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि मोदी सरकार और किसानों के बीच पिछले एक-डेढ़ साल से जो अस्तित्व की जो लड़ाई चल रही थी उसमें जीत अन्नदाता की ही हुई है। तमाम कोशिशों के बावजूद मोदी सरकार किसानों के हौसलों और हिम्मात को हिला नही पायी। यह वाकई में लोकतंत्र और एकता की जीत है। दूसरी तरफ यह भी जरूरी है कि किसानों की प्रमुख मांग को मानकर मोदी सरकार ने लचीले व्यवहार का परिचय दिया है। अब किसानों की अन्य मांगों पर भी सरकार विचार कर सकती है।

विजया पाठक

क्या राजनीतिक मोहरे हैं आदिवासी?

देश की राजनीति में हाशिये पर रहने वाले आदिवासी अचानक फ्रंटलाइन पॉलिटिक्स में आते दिखाई पड़ रहे हैं। जिसका सबसे बड़ा कारण आदिवासियों के प्रति जागा राजनीतिक दलों का मोह है। बीजेपी हो या फिर कांग्रेस। राजनीतिक पार्टियां आदिवासियों की शुभचिंतक बनती दिख रही हैं। बीजेपी वर्तमान में आदिवासियों के हितों को लेकर काफी गंभीर दिख रही है। उनको लेकर बड़ी-बड़ी घोषणाएं कर रही है। वहीं, मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता कमलनाथ का मानना है कि कांग्रेस शासनकाल में आदिवासियों के हित में ज्यादा काम हुए हैं। कमलनाथ का कहना है कि इंदिरा गांधी की सरकार ने आदिवासियों के हित में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। आदिवासियों के उत्थान के लिए कई बड़ी व कल्याणकारी योजनाएं भी शुरू की गई। जिसका आदिवासियों को अभी तक लाभ मिल रहा है। ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर ऐसा क्या हुआ कि राजनीतिक दल अचानक आदिवासियों का राग अलापने लगे हैं। पिछले कुछ दिनों में ऐसा मध्यप्रदेश या झारखंड में ही नहीं हुआ, बल्कि कई अन्य राज्यों में भी आदिवासियों को लुभाने का प्रयास किया। दरअसल, राजनीतिक जानकारों की मानें तो इसका बड़ा कारण अगले साल पांच राज्यों में होने जा रहे विधानसभा चुनाव भी हैं। पूरे देश में आदिवासी कुल आबादी का साढ़े आठ प्रतिशत है और इनकी आबादी 11 करोड़ से अधिक है। मध्यप्रदेश की अगर बात करें तो यहां जनसंख्या की लगभग 20 प्रतिशत आबादी आदिवासी है। जनगणना 2011 के मुताबिक मध्यप्रदेश में 43 आदिवासी समूह हैं। यह बात भी सही है कि पिछले 10 वर्षो में आदिवासियों की जमीनें सरकारों ने छीनी है। जंगलों में रहने वाले इन आदिवासियों से इनके जंगल छीन लिए गए। कभी विकास के नाम पर जंगलों को काटा तो कभी उदयोगपतियों को खनिज संपदा को लूटने के लिए औने-पौने दामों में जंगल की जमीनों को दिया गया। जिससे इनकी न केवल रोजी-रोटी छिनी बल्कि प्राकृतिक संपदा को भी भारी नुकसान पहुंचाया। आदिवासीमय होती सरकारों की नियत से यही लगता है कि यह सिर्फ राजनीतिक लाभ लेने की मंशा प्रतीत होती है।

विजया पाठक

वर्तमान समय में बीजेपी देश के अलाग-अलाग हिस्सों में आदिवासियों पर ज्यादा केंद्रित हो रही है। प्रधानमंत्री से लेकर बीजेपी राज्यों के मुख्यमंत्री आदिवासियों पर केंद्रित कांग्रेस आयोजित कर दर्शा रहे हैं कि भाजपा ही ऐसी पार्टी है जो आदिवासियों की हितैषी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने आदिवासी समाज के नायक रहे बिरसा मुंडा की जयंती के मौक़े पर संसद में उनकी प्रतिमा पर श्रद्धांजलि अर्पित की। झारखंड की राजधानी रांची में बिरसा मुंडा की याद में एक संग्रहालय का अनावरण किया और साथ ही ऐलान किया कि अब से बिरसा मुंडा की जयंती यानी 15 नवंबर को जनजातीय गौरव दिवस मनाया जाएगा। इसके बाद प्रधानमंत्री ने मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में जनजातीय गौरव कार्यक्रम में हिस्सा लिया और वहाँ के हबीबगंज स्टेशन का नाम रानी कमलापति रेलवे स्टेशन किया, जो एक गोंड रानी थीं। लेकिन बात सिर्फ़ मध्यप्रदेश, झारखंड की नहीं है। बीजेपी पिछले कुछ समय से मध्यप्रदेश से लेकर गुजरात तक अलग-अलग तरीके से आदिवासी समुदाय को लुभाने की कोशिश कर रही है। उसकी ये रणनीति उसके विरोधियों और राजनीतिक पर्यवेक्षकों को अचरज में डाल रही है। क्योंकि जिन पाँच राज्यों में कुछ महीने बाद चुनाव होने हैं और वहाँ आदिवासियों की संख्या को देखते हुए ये सवाल उठता है कि बीजेपी आखिर इस चुनावी दौर में आदिवासियों को इस स्तर पर क्यों साध रही है? जब इससे चुनावी हित

भारतीय जनता पार्टी को चुनाव से पहले

सधता हुआ नहीं दिख रहा है। ये सबको पता है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वनवासी सेवा कल्याण आश्रम के माध्यम से आदिवासियों के बीच एक लंबे समय से काम करता आ रहा है लेकिन राजनीतिक रूप से जनजातियों के बीच वर्चस्व कांग्रेस का रहा है और बीजेपी अब इस वर्चस्व को तोड़ने की कोशिश करती दिख रही है।

2021 से 2023-24 पर निशाना

बीते सात-आठ सालों में केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह और प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बीजेपी एक ऐसी राजनीतिक पार्टी बनकर उभरी है जो चुनाव के लिए खुद को तैयार नहीं करती है बल्कि हर दम चुनाव मोड़ में रहती है। बीजेपी की राजनीति को करीब से देखने-समझने वाले बताते हैं कि पार्टी का शीर्ष नेतृत्व एक समय में कई मंचों, लक्ष्यों और संभावनाओं को आकार देने की कोशिश में लगा रहता है। ये गतिविधियां 2023 के मध्यप्रदेश चुनाव और 2024 के आम चुनाव को ध्यान में रखते हुए की जा रही हैं। फरवरी में संघ की एक बैठक हुई थी जिसमें ये चिंता जताई गई थी कि आगामी जनगणना में बहुत सारे आदिवासी अपने आप को हिंदू नहीं बताना चाह रहे हैं। वे अपने आपको अन्य की श्रेणी में डालना चाहते हैं। संघ चाहता है कि वह आदिवासियों को ज्यादा से ज्यादा हिंदू समाज में शामिल करे। ऐसे में 9 अगस्त को जातीय गौरव सम्मान शुरू करने से लेकर बिरसा मुंडा का सम्मान आदि इसी व्यापक रणनीति का हिस्सा है। आदिवासियों को लेकर बीजेपी के प्रयासों का दूसरा पहलू राजनीति यानी बीजेपी के चुनावी लाभ से जुड़ा है।

मध्यप्रदेश में आदिवासी वोट बैंक को रिझाने की कोशिशें शुरू हो गई हैं और दोनों प्रमुख राजनीतिक दल सत्ताधारी भाजपा और विरोधी दल कांग्रेस ने अपने को आदिवासियों का सबसे बड़ा हितैषी बताना शुरू कर दिया है। मध्यप्रदेश की राजनीति में आदिवासी मतदाताओं की बड़ी भूमिका है, क्योंकि यहां की 230 विधानसभा सीटों में से 47 सीटें इस वर्ग के लिए आरक्षित हैं। इन सीटों पर हार और जीत काफी मायने रखती है। यही कारण है कि दोनों दलों ने इन सीटों पर अभी से जोर लगाना शुरू कर दिया है। कांग्रेस ने आदिवासियों को रिझाने के लिए आदिवासी अधिकार यात्रा का सहारा लिया है। वहीं दूसरी ओर भाजपा भी आदिवासियों को लुभाने की कोशिश में लगी है। इसी क्रम में जबलपुर में आजादी के 75 वें अमृत महोत्सव में जनजाति नायकों शंकरशाह व रघुनाथ शाह की याद में गौरव समारोह आयोजित किया। मध्यप्रदेश की सियासत में अब आदिवासी की अहमियत

आदिवासियों की याद क्यों आ रही है?

तेजी से बढ़ रही है। सत्ताधारी दल भाजपा और विपक्षी दल कांग्रेस ने इस वर्ग का दिल जीतकर आगामी समय में होने वाले पंचायत, नगरीय निकाय से लेकर वर्ष 2023 के विधानसभा चुनाव की जीत के लिए सियासी बिसात पर चालें चलना तेज कर दी है । यही कारण है कि आदिवासी केंद्रित राजनीति का दौर तेज होने के आसार बनने लगे है। राज्य की राजनीति की सत्ता की राह को फतह करने में जनजातीय वर्ग की अहम् भूमिका रही है, इस वर्ग ने जिस दल का साथ दिया, उसके लिए सरकार बनाना आसान रहा है। दोनों ही राजनीतिक दल इस बात से वाकिफ है और उन्होंने इसके लिए जमीनी तैयारी तेज कर दी है। राज्य में 21 प्रतिशत से ज्यादा आबादी आदिवासी वर्ग की है, इसी के चलते 84 विधानसभा क्षेत्र ऐसे है जहां आदिवासी बाहुतायत में है। कुल मिलाकर इन क्षेत्रों में जीत व हार आदिवासियों के वोट पर निर्भर है।

मध्यप्रदेश में जनजातियों की जनसंख्या लगभग 21 फीसदी (1.75 करोड़) है और वहाँ इसका असर दिखा। बीजेपी ने 2002 में झाबुआ में एक हिंदू संगम किया था, जहां लगभग दो से ढाई लाख आदिवासियों को बुलाया था। इसका बीजेपी को काफ़ी प्रभाव दिखा। साल 2003 के चुनाव में 47 आरक्षित सीटों में से 34 सीटें बीजेपी को मिली थीं। इसके बाद 2008 और 2013 के चुनाव में बीजेपी ने अपना प्रभाव कायम रखा। हालाँकि 2018 के चुनाव में बाज़ी पलट गयी। बीजेपी के पास इनमें से सिर्फ 16 सीटें रह गयीं और कांग्रेस को 31 सीटें मिल गईं। कमोबेश यही स्थिति छत्तीसगढ़ में भी हुई। अब बीजेपी का उद्देश्य आदिवासियों को लुभाकर वापस अपने साथ लाना है। बीजेपी इस रणनीति पर चलते हुए 2023 के एमपी से लेकर 2024 के आम चुनावों के लिए आदिवासी समुदाय में अपनी पैंठ बनाने की कोशिश कर रही है। वहीं, संघ आदिवासियों को हिंदू धर्म की परिधि में लाने की भरसक कोशिश कर रहा है। इस तरह ये संघ और बीजेपी की बहु-पक्षीय रणनीति है।

बीजेपी की बड़ी योजना

ये समझ लेना कि बीजेपी एक बड़े गेम प्लान के ज़रिए यूपी चुनाव को ध्यान में रखकर ये सभी कदम उठा रही है, ये थ्योरी में जितना अच्छा लगता है, ज़मीन पर उतना ख़रा नहीं उतरता। उत्तरप्रदेश में आदिवासियों की जनसंख्या के फैलाव में मिलता है। उत्तरप्रदेश में आदिवासी समुदाय की आबादी सिर्फ छत्तीसगढ़ और झारखंड की सीमा से लेकर सोनभद्र क्षेत्र में रहती है। ये कवायद यूपी चुनाव के लिए

भारत में आदिवासी उपेक्षित क्यों है?

अंतरराष्ट्रीय आदिवासी दिवस सिर्फ उत्सव मनाने के लिए नहीं, बल्कि आदिवासी अस्तित्व, संघर्ष, हक-अधिकारों और इतिहास को याद करने के साथ-साथ जिम्मेदारियों और कर्तव्यों की समीक्षा करने का भी दिन है। आदिवासियों को उनके अधिकार दिलाने और उनकी समस्याओं का निराकरण, भाषा संस्कृति, इतिहास आदि के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 9 अगस्त 1994 में जेनेवा शहर में विश्व के आदिवासी प्रतिनिधियों का विशाल एवं विश्व का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय आदिवासी सम्मेलन आयोजित किया। इसके बाद विश्व के सभी देशों में अंतरराष्ट्रीय आदिवासी दिवस को मनाया जाने लगा, पर अफसोस भारत के आदिवासी समुदाय आज भी उपेक्षित है। हर बार आदिवासी समाज ठगा ही गया है। आदिवासी बहुल क्षेत्र में आदिवासी समाज का अपनी धरोहर, अपने पारंपरिक सामाजिक मूल्यों और अधिकारों के साथ ही विकास हो, इसके लिए भारतीय संविधान ने प्रावधान किये गये हैं। आदिवासी समाज को जल-जंगल-जमीन विहीन होने से बचाने के लिए कानून भी बनाये गये। ये कानून न तो अंग्रेजों का उपहार है और न ही भारत के शासकों की आदिवासी हित-चिंता के प्रमाण है। बल्कि यह आदिवासी नायकों बिरसा मुंडा, टंटया भील जैसे नायकों के संघर्ष की देन है। आजाद भारत में आदिवासी समुदाय को वोट बैंक मानते हुए सरकारें उनके कल्याण की योजनाएं एवं कानून तो बनाती रही है, लेकिन हर बार आदिवासी समाज ठगा ही गया है, उसके प्रतिकूल ही हुआ है।

नहीं हो रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस समय कई मंचों पर एक साथ काम कर रहे हैं। एक तरफ वह पांच राज्यों के चुनावों के लिए काम कर रहे हैं। वहीं, दूसरी ओर वह अपने चुनाव साल 2024 के आम चुनाव पर भी ध्यान दे रहे हैं और जनजातियों तक पहुंचने की कोशिश है, वह अपने चुनाव के मद्देनज़र है। झारखंड का लगभग पूरा चुनाव ही जनजातियों पर निर्भर करता है। गुजरात में लगभग 30 से 35 सीटें जनजातियों से प्रभावित होती हैं।

राजनीतिक दलों को अचानक क्यों

जल, जंगल और जमीन के मालिक आदिवासी हैं- जल, जंगल और जमीन के मालिक आदिवासी हैं, इससे इनका अस्तित्व जुड़ा है। यूएनओ ने भी माना है कि इस पर आदिवासियों का हक है। यही नहीं, जमीन के अंदर के खनिज के मालिक भी आदिवासी हैं। भारत सरकार एवं प्रांतों की सरकारें आदिवासियों के हितों की बात तो बहुत करती हैं, लेकिन इनके भविष्य को बचाने के लिए गंभीरता नहीं दिखाती। आदिवासी समुदाय की जमीनों पर ही सरकारों की नजरें टिकी रहती है।

विकास के नाम पर सभी जगह आदिवासी विस्थापित हुए- जंगल के जंगल उजड़ रहे हैं। आदिवासी अपनी जमीन से बेदखल हो रहे हैं। सरकार मानने के लिए तैयार ही नहीं है कि आदिवासियों का भविष्य जमीन से जुड़ा है। आजादी के बाद देश का विकास हुआ, विकास होना भी चाहिए, लेकिन इसकी सबसे ज्यादा कीमत आदिवासियों ने चुकायी, बोकारो स्टील हो, एचइसी हो, राउरकेला स्टील प्लांट हो, सभी जगह उस क्षेत्र के आदिवासी विस्थापित हुए, आज इनकी हालत कोई इन गांवों में जाकर देखे, जमीन से बेदखल होने के बाद आदिवासी कहीं के नहीं रहे, विस्थापन का ख्याल सरकारों ने नहीं किया। बल्कि सरकारें इसके विपरीत रणनीतियां बना रही है। ऐसी ही कुचेष्ठा गुजरात में होती रही है। असंवैधानिक एवं गलत आधार पर गैर-आदिवासी को आदिवासी सूची में शामिल किये जाने एवं उन्हें लाभ पहुंचाने की गुजरात की वर्तमान एवं पूर्व सरकारों की नीतियों का विरोध इन दिनों गुजरात में आन्दोलन का रूप ले रहा है। सौराष्ट्र के गिर, वरड़ा, आलेच के जंगलों में रहने वाले भरवाड़, चारण, रबारी एवं सिद्धि मुस्लिमों को इनके संगठनों के दवाब में आकर गलत तरीकों से आदिवासी बनाकर उन्हें आदिवासी जाति के प्रमाण-पत्र दिये गये। इस ज्वलंत एवं आदिवासी अस्तित्व एवं अस्मिता के मुद्दे पर सत्याग्रह हो रहा हैं। अनेक कांग्रेसी एवं भाजपा के आदिवासी नेता भी उसमें शामिल हैं। गुजरात के आदिवासी जनजाति से जुड़े राठवा समुदाय में उनको आदिवासी न मानने को लेकर गहरा आक्रोश है। इन विकराल होती संघर्ष की स्थितियों पर नियंत्रण नहीं किया गया तो यह न केवल गुजरात सरकार बल्कि केन्द्र सरकार एवं अन्य प्रांतों की सरकारों के लिये एक बड़ी चुनौती बन सकता है।

भारत के जंगल समृद्ध हैं, आर्थिक रूप से और पर्यावरण की दृष्टि से भी। देश के जंगलों की कीमत खरबों रुपये आंकी गई है। ये भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद से तो कम है लेकिन कनाडा, मेक्सिको और रूस जैसे देशों के सकल उत्पाद से ज्यादा है। इसके बावजूद यहां रहने वाले आदिवासियों के जीवन में आर्थिक दुश्वारियां मुंह बाये खड़ी रहती हैं। आदिवासियों की विडंबना यह है कि जंगलों के औद्योगिक इस्तेमाल से सरकार का खजाना तो भरता है, लेकिन इस आमदनी के इस्तेमाल में स्थानीय आदिवासी समुदायों की भागीदारी को लेकर कोई प्रावधान नहीं है। जंगलों के बढ़ते औद्योगिक उपयोग ने आदिवासियों को जंगलों से दूर किया है। आर्थिक जरूरतों की वजह से आदिवासी जनजातियों के एक वर्ग को शहरों का रुख करना पड़ा है। विस्थापन और पलायन ने आदिवासी संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज और संस्कार को बहुत हद तक प्रभावित किया है। गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी के चलते आज का विस्थापित आदिवासी समाज, खासतौर पर उसकी नई पीढ़ी, अपनी संस्कृति से लगातार दूर होती जा रही है। आधुनिक शहरी संस्कृति के संपर्क ने आदिवासी युवाओं को एक ऐसे दोराहे पर खड़ा कर दिया है, जहां वे न तो अपनी संस्कृति बचा पा रहे हैं और न ही पूरी तरह मुख्यधारा में ही शामिल हो पा रहे हैं।

आई आदिवासियों की याद

देश की राजनीति में हाशिये पर रहे वाले आदिवासी अचानक फ्रंट लाइन पॉलिटिक्स में आते दिखाई पड़ रहे हैं। जिसका सबसे बड़ा कारण आदिवासियों के प्रति जागा राजनीतिक दलों का मोह है। बीजेपी हो या फिर कांग्रेस राजनीतिक पार्टियां आदिवासियों की शुभचिंतक बनती दिख रही हैं। वहीं, मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता कमलनाथ ने कांग्रेस शासनकाल में आदिवासियों के हित में किए गए कामों का

मध्यप्रदेश : सालों से उपेक्षित आदिवासी समुदाय

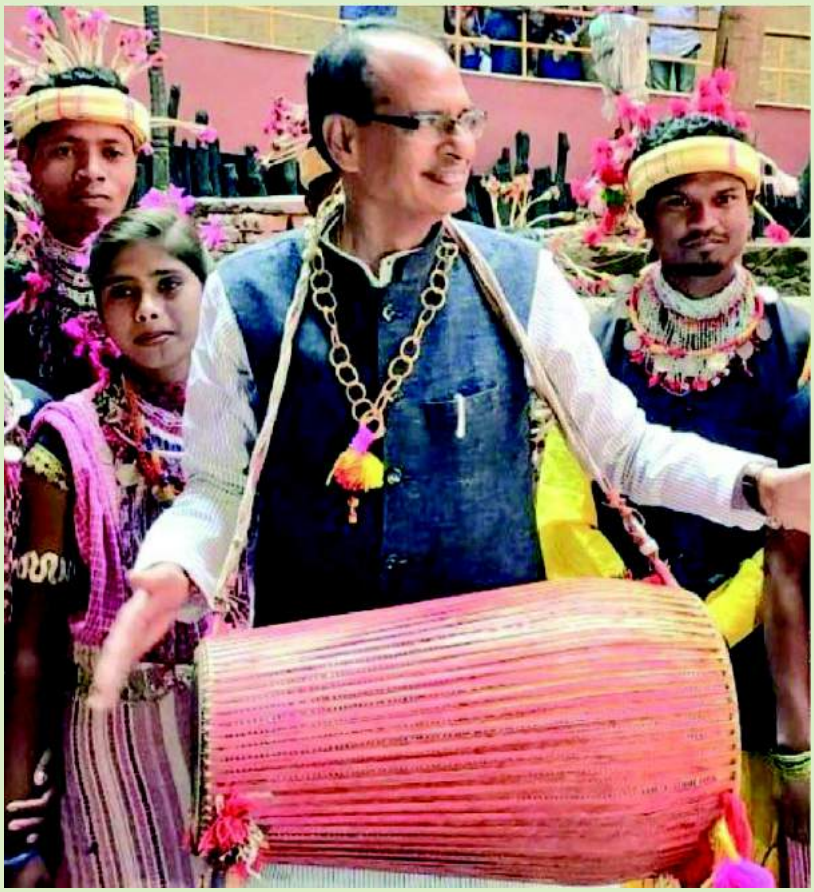

मध्यप्रदेश की सियासत में अब आदिवासी की अहमियत तेजी से बढ़ रही है। सत्ताधारी दल भाजपा और विपक्षी दल कांग्रेस ने इस वर्ग का दिल जीतकर आगामी समय में होने वाले पंचायत, नगरीय निकाय से लेकर वर्ष 2023 के विधानसभा चुनाव की जीत के लिए सियासी बिसात पर चालें चलना तेज कर दी है । यही कारण है कि आदिवासी केंद्रित राजनीति का दौर तेज होने के आसार बनने लगे है। राज्य की राजनीति की सत्ता की राह को फतह करने में जनजातीय वर्ग की अहम् भूमिका रही है, इस वर्ग ने जिस दल का साथ दिया, उसके लिए सरकार बनाना आसान रहा है। दोनों ही राजनीतिक दल इस बात से वाकिफ

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने 15 नवंबर यानी बिरसा मुंडा जयंती को जनजातीय गौरव दिवस के रूप में मनाने और भव्य आयोजन करने की घोषणा की। विपक्षी कांग्रेस में भी प्रदेश में आदिवासी अधिकार यात्रा निकाली । केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह 18 सितंबर को मध्यप्रदेश के जबलपुर में राज्य सरकार द्वारा आयोजित एक समारोह में शरीक हुए थे। यह समारोह आजादी की लड़ाई में शहीद हुए आदिवासी समुदाय से ताल्लुक रखने वाले राजा शंकर शाह और कुंवर रघुनाथ शाह के बलिदान दिवस पर आयोजित किया गया था। समारोह में अमित शाह ने जनजातीय (आदिवासी) हित में भाजपा सरकारों द्वारा संचालित योजनाएं गिनाईं और कई याद दिलाया। उन्होंने कहा कि इंदिरा गांधी की सरकार ने आदिवासियों के हित में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। आदिवासियों के उत्थान के लिए कई बड़ी व कल्याणकारी योजनाएं भी शुरू की गई। जिसका आदिवासियों को अभी तक लाभ मिल रहा है। कमलनाथ ने कहा कि कांग्रेस की यूपीए सरकार साल 2006 में आदिवासी समुदाय के हित के लिए वन अधिकार अधिनियम लाई। जिसने आदिवासियों मजबूती प्रदान की। ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर ऐसा क्या हुआ कि राजनीतिक

अचानक राजनीति के केंद्र में क्यों आ गये?

है और उन्होंने इसके लिए जमीनी तैयारी तेज कर दी है। राज्य में 21 प्रतिशत से ज्यादा आबादी आदिवासी वर्ग की है, इसी के चलते 84 विधानसभा क्षेत्र ऐसे है जहां आदिवासी बाहुतायत में है। कुल मिलाकर इन क्षेत्रों में जीत व हार आदिवासियों के वोट पर निर्भर है। वर्ष 2018 के विधानसभा चुनाव में भाजपा इन 84 में से 34 सीट पर जीत हासिल कर सकी थी, जबकि वर्ष 2013 में भाजपा ने 59 क्षेत्रों में जीत दर्ज की थी। इस तरह पार्टी को वर्ष 2013 की तुलना में 2018 में 25 सीटों पर नुकसान हुआ था। राज्य में 47 विधानसभा क्षेत्र आदिवासी वर्ग के लिए आरक्षित है।

घोषणाएं कीं। पिछली कांग्रेस सरकारों पर जनजातीय वर्ग की उपेक्षा करने के आरोप भी लगाए। लगे हाथों मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने भी राज्य में पेसा (पंचायत, अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार क़ानून, 1996) कानून लागू करने की घोषणा कर दी। उन्होंने और भी घोषणाएं कीं, जैसे कि राज्य के आदिवासी बहुल 89 विकासखंडों के करीब 24 लाख परिवारों को घर-घर सरकारी राशन पहुंचाने के लिए राशन आपके द्वार योजना की शुरुआत और छिंदवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम राजा शंकरशाह के नाम पर रखना।

जनजातीय गौरव दिवस मनाने का मकसद बताते हुए बीजेपी कहती है कि जब-जब देश पर विपत्ति आई, उससे

दल अचानक आदिवासियों का राग अलापने लगे हैं। पिछले कुछ दिनों में ऐसा मध्यप्रदेश या झारखंड में ही नहीं हुआ, बल्कि कई अन्य राज्यों में भी आदिवासियों समाज को लुभाने का प्रयास किया। दरअसल, राजनीतिक जानकारों की मानें तो इसका बड़ा कारण अगले साल पांच राज्यों में होने जा रहे विधानसभा चुनाव भी हैं। पूरे देश में आदिवासी कुल आबादी का साढ़े आठ प्रतिशत है और इनकी आबादी 11 करोड़ से अधिक है। देश के उन छह राज्यों से अलग हैं, जहां आदिवासियों की

निपटने में जनजातीय समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। राष्ट्र, धर्म, जाति और समाज की रक्षा हेतु जनजातीय वर्ग के वीर योद्धा मुगलों और अंग्रेजों से लड़े इसलिए बिरसा मुंडा जयंती हम गौरव दिवस के रूप में मनाएंगे। दूसरी ओर विपक्षी कांग्रेस पार्टी ने भी प्रदेश में आदिवासी अधिकार यात्रा निकाली। 06 सितंबर को बड़वानी में इसकी औपचारिक शुरुआत हुई थी, जिसमें कांग्रेस प्रदेशाध्यक्ष कमलनाथ समेत राज्य के कई दिग्गज कांग्रेसी शामिल हुए थे। यात्रा के दौरान आदिवासियों को समझाया गया कि आज उनके पास जो कुछ भी है वो आरक्षण, पांचवी अनुसूची, पेसा कानून, वनाधिकार कानून, एट्रोसिटी एक्ट के कारण है। यह सारे अधिकार कांग्रेस ने दिए थे। राज्य के आदिवासी वर्ग के बीच तीसरा विकल्प बनकर उभर रहा जय आदिवासी युवा शक्ति संगठन (जयस) ने भी 24 अक्टूबर को मनावर क्षेत्र में आदिवासी युवा महापंचायत का आयोजन किया। वहीं मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने मंगुभाई पटेल भी आदिवासी क्षेत्रों के लगातार दौरे करने को लेकर सुर्खियों में हैं। दौरों पर वे आदिवासियों से चर्चा करते हैं, उन्हें संबोधित करते हैं और उनके घर भोजन करते देखे जा सकते हैं।

आदिवासियों को प्रभावित करने, अपना बताने और अपना बनाने की इस चौतरफा कवायद से प्रश्न उठता है

आबादी 50 प्रतिशत से भी ज्यादा है। इनमें उत्तर पूर्व के अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मिजोरम, मेघालय, दादर एवं नागर हवेली और लक्षद्वीप है। उत्तर पूर्व के सिक्किम में 33.8 फ़ीसदी और मणिपुर में 35.1 फ़ीसदी आदिवासी आबादी है।

राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासियों की भूमिका

लोकसभा चुनाव के लिए भाजपा ने अपने वरिष्ठ आदिवासी नेता कड़िया मुंडा को टिकट नहीं दिया। वे भारतीय राजनीति के राष्ट्रीय परिदृश्य में ऐसे आदिवासी नेता

कि यह उपेक्षित तबका अचानक से राजनीति के केंद्र में कैसे आ गया? धार-झाबुआ जैसे आदिवासी बहुल इलाकों वाले मालवा-निमाड़ अंचल से ही ताल्लुक रखते हैं। देश में सर्वाधिक आदिवासी मध्यप्रदेश में रहते हैं। झाबुआ-अलीराजपुर जैसे जिलों में तो 85-90 फीसदी आदिवासी हैं। 2018 के सत्ता परिवर्तन में आदिवासी वोट अहम था, जिसकी बदौलत कांग्रेस सरकार बनी। ज्योतिरादित्य सिंधिया की बगावत से 29 सीटों पर हुए उपचुनाव में कांग्रेस की हार ने उसके सत्ता वापसी के द्वार बंद कर दिए तो उसने 2023 के विधानसभा चुनावों पर ध्यान लगाना शुरू कर दिया। कांग्रेस यह ध्यान में रखकर कि पिछली बार आदिवासी और दलित समुदाय के बूते उसने चुनाव जीता था। आक्रामक होकर जनजातीय मुद्दों पर खास ध्यान देने लगी। उसकी सक्रियता देखकर भाजपा भी आदिवासियों के बीच अपने खोए जनाधार को वापस पाने के लिए छटपटाने लगी।

बता दें कि 230 सदस्यीय मध्यप्रदेश विधानसभा में 20 फीसदी यानी 47 सीट अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए आरक्षित हैं। जानकारों के मुताबिक करीब 70 सीट पर आदिवासी मतदाताओं का प्रभाव है। 2003 में राज्य में भाजपा की वापसी में आदिवासी वर्ग का अहम योगदान था। तब 41 सीट एसटी आरक्षित थीं, जिनमें 37 भाजपा

हैं, जो लोकसभा के उपाध्यक्ष भी रहे। यह सवाल सिर्फ कड़िया मुंडा से जुड़ा सवाल नहीं है। यह सवाल दिवंगत वरिष्ठ नेता पीए संगमा से भी जुड़ा हुआ है, जो लोकसभा के अध्यक्ष भी रहे। यह सवाल हर आदिवासी नेता का पीछा करता है। सवाल राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी मुद्दा और उनके नेतृत्व का है। देश की संसदीय राजनीति में हमें राष्ट्रीय छवि का कोई आदिवासी नेता दिखायी नहीं देता, जो संपूर्ण भारत के आदिवासी समुदायों का प्रभावी चेहरा हो। यह विडंबना ही है कि

जीती जबकि कांग्रेस को महज दो सीट मिलीं। अगले दो चुनावों में भी आदिवासी भाजपा के साथ रहा और वह सत्ता में बनी रही। 2008 में एसटी सीट की संख्या बढ़कर 47 हो गई। 2008 और 2013 के विधानसभा चुनावों में भाजपा क्रमशः 29 और 31 सीट जीती, जबकि कांग्रेस क्रमशः 17 और 15 सीट जीती लेकिन, 2018 में पासे पलट गए। भाजपा की सीटें आधी रह गईं। वह 16 पर सिमट गई। जबकि कांग्रेस की सीट बढ़कर दोगुनी (30) हो गईं और उसने सरकार बना ली। चुनाव में भाजपा ने कुल 109 और कांग्रेस ने 114 सीट जीतीं। हार-जीत का अंतर इतना मामूली था कि यदि आदिवासी मतदाता भाजपा से नहीं छिटकता तो उसकी सरकार बननी तय थी।

समूचे प्रदेश में कांग्रेस-भाजपा दोनों के पास राज्य में आदिवासी नेतृत्व के नाम पर कोई ऐसा चेहरा नहीं है जो वोट दिला सके। दोनों की स्थिति डांवाडोल है। कांग्रेस आदिवासियों में अपना जनाधार बचाने के लिए जूझ रही है तो भाजपा उसे झपटने के लिए जाल बुन रही है। इस बीच जयस विकल्प बनकर उभरा है। उसके साथ आदिवासी युवा ज्यादा जुड़ते दिख रहे हैं जो कांग्रेस-भाजपा के लिए चिंताजनक है। इसलिए उन्होंने अभी से ही बिसात बिछाकर आदिवासियों को प्रभावित करने की जोर-आजमाइश शुरू कर दी है। आदिवासी नेतृत्व की बात करें तो मध्यप्रदेश का

जयपाल सिंह मुंडा के बाद संसदीय राजनीति में राष्ट्रीय छवि का प्रभावी आदिवासी नेतृत्व उभर कर नहीं आया। भले ही उन्होंने अलग झारखंड राज्य की मांग को अपनी राजनीति के केंद्र में रखा था, लेकिन उनकी वैचारिकी आदिवासियत की थी, जो देश के विभिन्न समुदायों में बंटे आदिवासियों को संबोधित करती थी। वे न केवल पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों से जुड़े रहे, बल्कि नागा समस्या को हल करने में भी उन्होंने सक्रिय पहल की। जयपाल सिंह मुंडा न

दुर्भाग्य है कि सबसे अधिक आदिवासी जिस राय में रहते हैं, वहां उनका कोई सर्वमान्य नेता तक नहीं है। जानकार मानते हैं कि भाजपा ने यहां कभी आदिवासी नेतृत्व को आगे बढ़ाया ही नहीं। आदिवासी नेतृत्व के नाम पर केवल केंद्रीय मंत्री फग्गन सिंह कुलस्ते नज़र आते हैं, लेकिन उनका प्रभाव भी केवल अपने संसदीय क्षेत्र मंडला तक सीमित है। इस तथ्य से दोनों ही दल वाकिफ हैं। इसी कारण जयस भी आदिवासियों के बीच पैर जमाने में सफल हुआ।

भाजपा अब गुजरात के आदिवासी नेता मंगुभाई पटेल को मध्यप्रदेश का राज्यपाल बनाकर उनके माध्यम से आदिवासियों के साथ जुड़ने की कोशिश कर रही है। उल्लेखनीय है कि मंगुभाई गुजरात सरकार में आदिवासी कल्याण मंत्री रहे थे। राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद गुजरात विधानसभा चुनावों से ठीक पहले तक राज्यपाल हुआ करते थे। वे जिस वर्ग से ताल्लुक रखते हैं, उसकी संख्या गुजरात में खासी अच्छी है। भाजपा ने उस वर्ग के बीच उनकी छवि को काफी भुनाया था। इसलिए आश्चर्य नहीं कि मध्यप्रदेश में भी राज्यपाल के जरिये भाजपा अपनी सियासत साध रही हो।

राज्य की राजनीति के आदिवासीमय हो जाने के और कारण हैं

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के मुताबिक देश में आदिवासियों पर सर्वाधिक अत्याचार मध्यप्रदेश में होता है। हाल ही में कुछ घटनाएं राष्ट्रीय सुर्खियां भी बनीं।

सिर्फ आदिवासी पक्ष को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में रख रहे थे, बल्कि उनका प्रभाव नेहरू और कांग्रेस के अन्य नेताओं पर था। कांग्रेस उनके नेतृत्व के उभार और लोकप्रियता से हमेशा चिंतित रही। जब उनके द्वारा गठित आदिवासी महासभा, झारखंड पार्टी के रूप में तब्दील होकर 1952 के चुनाव में उतरी तो उसने अप्रत्याशित प्रदर्शन करते हुए न केवल लोकसभा की तीन सीटों पर जीत हासिल की बल्कि उसने बिहार विधानसभा की तैंतीस सीटों को भी जीत लिया था। उसके

सहरिया और बैगा जैसी जनजातियां यहां भुखमरी की शिकार हैं। आदिवासियों की जमीनें छीनी गईं। इस सबके डैमेज कंट्रोल के लिए भी भाजपा अब प्रतीकों की राजनीति कर रही है। जिस तरह भाजपा राष्ट्रवाद और हिंदुत्व के प्रतीकों के सहारे मतदाताओं की भावनाएं भुनाती है, उसी तरह बिरसा मुंडा, रघुनाथ शाह और शंकर शाह जैसे आदिवासी प्रतीकों के सहारे वह आदिवासियों से जुड़ना चाहती है। न सिर्फ पिछले विधानसभा चुनाव, बल्कि लोकसभा चुनाव में भी भाजपा को आदिवासी क्षेत्रों में अपेक्षानुरूप समर्थन नहीं मिला। भाजपा समझ गई कि आदिवासी को और बरगला नहीं सकते, वह छिटक रहा है। इसलिए मुख्यमंत्री से लेकर केंद्रीय गृहमंत्री तक आदिवासियों को प्रभावित करने में जुटे हैं। दोनों दल जानते हैं कि जिस ओर आदिवासी जाएगा, सरकार उसकी बननी है। इसलिए दोनों ने आदिवासी को अपने काबू में रखने की कवायद शुरू कर दी है। लेकिन जब आयोजन मंच से कांग्रेस पर निशाना साधा जाता है तो स्वतः ही यह राजनीतिक श्रेणी में आ जाते हैं। मसलन जब अमित शाह कहते हैं कांग्रेस ने अभी तक बस जनजातीय वर्ग के वोट लिए हैं। उनका भला कभी नहीं किया। म.प्र. के बीजेपी अध्यक्ष वीडी शर्मा कहते हैं जनजातीय वोट में बंटवारा हो, कांग्रेस यही प्रयास करती है। जबकि भाजपा हमेशा

इस प्रदर्शन ने राष्ट्रीय दलों की नींद उड़ा दी थी। जयपाल सिंह मुंडा जिस तरह राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावी होकर हस्तक्षेप करते रहे, वह आगे चलकर आदिवासी नेताओं से क्यों नहीं संभव हो पाया? कुछ समय के लिए शिबू सोरेन में इसकी झलकी मिली थी, लेकिन वे बहुत दूर तक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सके। क्या बिना आदिवासी मुद्दों के राजनीतिकरण के राष्ट्रीय नेतृत्व का उभार संभव है? जयपाल सिंह मुंडा, जापू फिजो या शिबू सोरेन की लोकप्रियता की वजह यह रही कि इन्होंने आदिवासी मुद्दों को

जनजातियों के कल्याण के लिए प्रयासरत है। तो वे सीधे तौर पर वोट बैंक की चुनावी राजनीति करते नज़र आते हैं।

अब सवाल उठता है कि अगर भाजपा आदिवासी हितैषी है तो पंद्रह सालों के शासन में पेसा कानून और पांचवी अनुसूची लागू करने में इतनी देर क्यों? कांग्रेसी कमलनाथ सरकार ने विश्व आदिवासी दिवस का शासकीय अवकाश घोषित किया था और इसे धूमधाम से मनाने के लिए आदिवासी विकासखंडों में प्रत्येक जनपद को 50-50 हजार रुपये दिए थे, लेकिन भाजपा ने अवकाश भी रद्द किया और राशि देना भी। यह सब दिखाता है कि भाजपा आदिवासी विरोधी है लेकिन हितैषी होने का ढोंग करती है। बता दें कि शिवराज सरकार ने विश्व आदिवासी दिवस (9 अगस्त) की छुट्टी रद्द कर दी थी, जिस पर काफी बवाल हुआ था। आदिवासी संगठनों ने इसका विरोध किया था। कांग्रेस ने सदन में हंगामा किया था। तब आदिवासियों के बीच अपनी बिगड़ती छवि देखकर ही मुख्यमंत्री ने बिरसा मुंडा जयंती को जनजातीय गौरव दिवस के रूप में मनाने और इस दिन सार्वजनिक अवकाश की घोषणा की। हालिया सक्रियता से पहले दोनों दलों की आदिवासी राजनीति आदिवासियों के हिंदू होने या न होने की बहस तक सीमित थी जिसमें दोनों दलों के शीर्ष राज्य स्तरीय नेता उतर चुके थे। भाजपा जहां आदिवासियों को हिंदू मानती तो वहीं कांग्रेस आरोप लगाती कि भाजपा आदिवासियों का हिंदूकरण करके उनकी संस्कृति को

राष्ट्रीय फलक पर उभारा। झारखंड राज्य की मांग का मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावकारी रहा। उसी तरह जापू फिजो के नेतृत्व में उठी नागाओं की मांग भी राष्ट्रीय मुद्दा बनी। कथित मुख्यधारा की राजनीति तो आदिवासी मुद्दों को हमेशा उपेक्षित करती रही। बाद के दिनों में क्षेत्रीय आदिवासी राजनीति के प्रतिनिधि भी आदिवासी मुद्दों को चिन्हित करने में सफल नहीं हुए जबकि आजादी के बाद आदिवासी समाज सबसे ज्यादा अस्मिता और अस्तित्व संकट से घिर गया। वह

नुकसान पहुंचा रही है।

05 अक्टूबर को झाबुआ में भाजपा सरकार ने जनजातीय सम्मेलन का आयोजन किया था, जहां मुख्यमंत्री ने अनेक घोषणाएं कीं, जैसे कि आदिवासियों को रोजगार के अवसर देंगे, पुलिस में दर्ज आपराधिक मामले वापस लेंगे, आबकारी कानून में संशोधन करके महुआ से शराब बनाने का अधिकार देंगे। 15 नवंबर को जनजातीय गौरव दिवस मनाने के साथ-साथ भोपाल में भी एक विशाल समागम का आयोजन किया। रघुनाथ शाह और शंकर शाह को वे अपना आदर्श बता रहे हैं, करीब डेढ़ दशक पहले उन्हीं के नाम पर शुरू हुआ पुरस्कार इनकी सरकार ने बंद किया था। रानी दुर्गावती ऋण योजना भी इन्होंने बंद की। पुरस्कार और योजना शुरू करने वाले मंत्री से जनजाति मंत्रालय तक छीन लिया। भाजपा के आदिवासी प्रेम का सच यह है कि उन्होंने जनजाति मंत्रालय का मंत्री तक गैर आदिवासी (लाल सिंह आर्य) को बना दिया था। एक ओर आदिवासियों पर अत्याचार की घटनाएं हैं, तो दूसरी ओर आदिवासी समाज के अंदर होने वाली वे अमानवीय घटनाएं हैं। जहां महिला को निर्वस्त्र करके उसके कंधे पर पुरुष बैठाकर गांव में घुमाया जाता है, उन्हें पेड़ से उलटा लटका दिया जाता है। अफसोस कि आदिवासी हितैषी सरकार इन खाप पंचायत शरीके कानूनों के खिलाफ आदिवासियों में जनजागरण नहीं लाती। चूंकि यह मुद्दा वोट बैंक प्रभावित कर सकता है, इसलिए इन

विकास की मार, जल, जंगल और जमीन की लूट, विस्थापन, पलायन और राजकीय हिंसा का शिकार बना।

इस तरह के आदिवासी मुद्दों को राजनीतिक दलों द्वारा उपेक्षित करने का परिणाम यह हुआ कि आदिवासी समाज का मजबूत जुड़ाव गैर-संसदीय राजनीति यानी नक्सल आंदोलनों के साथ हो गया। आदिवासी मुद्दों को तो कभी राष्ट्रीय दलों ने ईमानदारी से उठाया ही नहीं। सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाले राजनीतिक दल भी आदिवासियों को अपने एजेंडे में

बर्बर घटनाओं को मूक समर्थन दिया जाता है।

मध्यप्रदेश में आदिवासी वोट बैंक पर सियासी दलों की नजर

मध्यप्रदेश में आदिवासी वोट बैंक को रिझाने की कोशिशें शुरू हो गई हैं और दोनों प्रमुख राजनीतिक दल सत्ताधारी भाजपा और विरोधी दल कांग्रेस ने अपने को आदिवासियों का सबसे बड़ा हितैषी बताना शुरू कर दिया है। मध्यप्रदेश की राजनीति में आदिवासी मतदाताओं की बड़ी भूमिका है, क्योंकि यहां की 230 विधानसभा सीटों में से 47 सीटें इस वर्ग के लिए आरक्षित हैं। इन सीटों पर हार और जीत काफी मायने रखती है। यही कारण है कि दोनों दलों ने इन सीटों पर अभी से जोर लगाना शुरू कर दिया है। कांग्रेस ने आदिवासियों को रिझाने के लिए आदिवासी अधिकार यात्रा का सहारा लिया है। पूर्व मुख्यमंत्री कमलनाथ ने बड़वानी में इस यात्रा में हिस्सा लिया और भाजपा पर जमकर हमले बोले, उसे आदिवासी विरोधी करार देने में तनिक भी हिचक नहीं दिखाई। साथ ही शिवराज सिंह चौहान पर हमला बोलते हुए कहा कि वे सिर्फ घोषणाएं ही करते हैं। वे एक्टिंग भी अच्छी कर लेते हैं। वहीं दूसरी ओर भाजपा भी आदिवासियों को लुभाने की कोशिश में लगी है। इसी क्रम में जबलपुर में आजादी के 75 वें अमृत महोत्सव में जनजाति नायकों शंकरशाह व रघुनाथ शाह की याद में गौरव समारोह 18 सितंबर को आयोजित किया।

शामिल नहीं करते। उन पर लगने वाले फर्जी देशद्रोह के मुद्दों तक पर भी चुप रहते हैं या लोकतंत्र की बहुमत वाली राजनीति में बड़ा वोट बैंक न होने से आदिवासी समाज का कोई मुद्दा नहीं है? क्या बड़ा वोट बैंक ही किसी भी नेतृत्व को राष्ट्रीय राजनीति के शीर्ष पर बठाने में सक्षम है? अगर ऐसा है, तो फिर इस लोकतंत्र में देश की आबादी में आठ प्रतिशत वाले आदिवासी समाज का भविष्य क्या होगा? राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी नेतृत्व और मुद्दों की मांग को जातिवादी मांग नहीं माना

मप्र की सियासत में तेजी से बढ़ रही है आदिवासी की अहमियत

मध्यप्रदेश की सियासत में अब आदिवासी की अहमियत तेजी से बढ़ रही है। सत्ताधारी दल भाजपा और विपक्षी दल कांग्रेस ने इस वर्ग का दिल जीतकर आगामी समय में होने वाले पंचायत, नगरीय निकाय से लेकर वर्ष 2023 के विधानसभा चुनाव की जीत के लिए सियासी बिसात पर चालें चलना तेज कर दी है । यही कारण है कि आदिवासी केंद्रित राजनीति का दौर तेज होने के आसार बनने लगे है। राज्य की राजनीति की सत्ता की राह को फतह करने में जनजातीय वर्ग की अहम् भूमिका रही है, इस वर्ग ने जिस दल का साथ दिया, उसके लिए सरकार बनाना आसान रहा है। दोनों ही राजनीतिक दल इस बात से वाकिफ है और उन्होंने इसके लिए जमीनी तैयारी तेज कर दी है। राज्य में 21 प्रतिशत से ज्यादा आबादी आदिवासी वर्ग की है, इसी के चलते 84 विधानसभा क्षेत्र ऐसे है जहां आदिवासी बाहुतायत में है। कुल मिलाकर इन क्षेत्रों में जीत व हार आदिवासियों के वोट पर निर्भर है। वर्ष 2018 के विधानसभा चुनाव में भाजपा इन 84 में से 34 सीट पर जीत हासिल कर सकी थी, जबकि वर्ष 2013 में भाजपा ने 59 क्षेत्रों में जीत दर्ज की थी। इस तरह पार्टी को वर्ष 2013 की तुलना में 2018 में 25 सीटों पर नुकसान हुआ था।

जाना चाहिए। यह हमारे लोकतंत्र के भागीदारी करने और प्रतिनिधित्व के सिद्धांत पर आधारित है। इसी सिद्धांत के आधार पर लोकसभा चुनाव में अनुसूचित जनजाति के लिए कुल 545 सीटों में से 47 सीट आरक्षित हैं। अब जबकि चुनाव में उम्मीदवारों के निजी व्यावसायिक हित एवं दलों के एजेंडे इस सिद्धांत के ऊपर हावी हो गये हैं। ऐसे में आदिवासियों के मुद्दे

राज्य में 47 विधानसभा क्षेत्र आदिवासी वर्ग के लिए आरक्षित है। इन क्षेत्रों में वर्ष 2013 के चुनाव मे भाजपा ने 31 सीटें जीती थीं, जबकि कांग्रेस के खाते में 15 सीटें आईं थीं।वहीं वर्ष 2018 के चुनाव में भाजपा सिर्फ 16 सीटें ही जीत सकी और कांग्रेस का आंकड़ा 30 सीटों पर पहुंच गया। परिणामस्वरुप भाजपा को सत्ता से बाहर होना पड़ा था।

आदिवासी वोट बैंक पर दोनों दल अपनी पकड़ को मजबूत बनाए रखना चाहते है, यही कारण है कि इन दिनों आदिवासी हितैषी होने का दंभ भरा जा रहा हैं। भाजपा ने 15 नवंबर केा बिरसामुंडा की जयंती पर जनजातीय गौरव दिवस मनाया और इसमें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी शामिल हुए। 22 नवंबर को मंडला में एक भव्य कार्यक्रम हुआ। यह जनजातीय गौरव सप्ताह के समापन का कार्यक्रम है। इसी तरह टंटया भील के बलिदान दिवस पर इंदौर के पातालपानी में 04 दिसंबर को एक समारोह होने जा रहा है।

एक तरफ जहां भाजपा आदिवासियों में पैठ बढ़ाने की जुगत में लगी है तो दूसरी और कांग्रेस भी इस वर्ग में अपने जनाधार को बरकरार रखना चाह रही है। यही कारण है कि 24 नवंबर को जनजातीय वर्ग के विधायकों और नेताओं की भोपाल में बैठक बुलाई गई। दोनों राजनीतिक दलों की बढती सक्रियता यह संदेश देने लगी है कि उनके लिए आदिवासी वोट बैंक सत्ता की राह को आसान बना सकता

फिर से गौण हो गये हैं। यह संसदीय व्यवस्था के लिए अच्छा संकेत नहीं है।

आगामी चुनावी राज्यों में आदिवासियों का प्रतिशत

मध्यप्रदेश की अगर बात करें तो यहां जनसंख्या की लगभग 21 प्रतिशत आबादी आदिवासी है। जनगणना 2011 के मुताबिक मध्यप्रदेश में 43 आदिवासी समूह हैं। इनमें भील-भिलाला आदिवासी समूह की जनसंख्या सबसे ज्यादा 59.939 लाख है। इसके बाद गोंड समुदाय का नंबर आता है, जिनकी आबादी 50.931 लाख

है, लिहाजा उन्होंने जमीनी तौर पर इस वर्ग तक पहुंचने की मुहिम को तेज कर दिया है।

आदिवासी इलाके में बढ़ती कार्यक्रम की उपयोगिता

प्रदेश के धार, झाबुआ, मंडला, छिंदवाड़ा, शहडोल सहित कुछ ऐसे क्षेत्र है जहां आज भी बड़ी संख्या में आदिवासी समुदाय के लोग निवासरत हैं। यह लोग आज भी मूलभूत सुविधाओं की कमी से दो-चार हो रहे हैं। कभी नक्सली हमले का डर तो कभी भूख की मार। यह दोनों ही इन आदिवासी समुदाय के लोगों के लिए बड़ी चुनौती है। निश्चित ही शिवराज सरकार ने आदिवासी समुदाय के हित के लिए एक पहल करने का प्रयास किया है, लेकिन अगर यह समारोह आदिवासी इलाकों में होता तो निश्चित ही आदिवासी समुदाय के लोगों के अंदर से असुरक्षा का भाव दूर होता। इस कार्यक्रम की उपयोगिता और बढ़ जाती। मैंने खुद कई बार आदिवासी क्षेत्रों का भ्रमण किया है इसलिए पूर्ण विश्वास है कि अगर इस तरह के आयोजन या फिर मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री का दौरा आदिवासी इलाकों में होता रहे तो यह आदिवासी समुदाय भी खुद को मुख्य धारा का हिस्सा समझेगा।

मंच से मप्र के राज्यपाल की तारीफ के क्या मायने?

जनजातीय गौरव दिवस समारोह में आदिवासी समुदाय के लोगों को लुभाने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मप्र के राज्यपाल मंगू भाई पटेल की यह कहते हुए तारीफ कर दी कि वो मप्र के एकमात्र आदिवासी समुदाय के राज्यपाल हैं। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि न तो राज्यपाल महोदय मध्यप्रदेश से कोई वास्ता रखते हैं और न ही उन्होंने कभी आदिवासी समुदाय के लिए कोई कार्य किया है। ऐसे में फिर आदिवासी समुदाय के सामने उनकी तारीफ करना क्यों जरूरी समझा? वे भले ही आदिवासी समुदाय से आते हों लेकिन उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन में कभी भी कुछ ऐसा कार्य नहीं किया जिससे कहा जा सके तो उन्होंने आदिवासियों की आवाज उठाई है। आदिवासी समुदाय के लिए कार्य किया तो वो हैं मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और पूर्व मुख्यमंत्री कमलनाथ। लेकिन कांग्रेस पार्टी के लिए अभी रुकने का समय नहीं है। क्योंकि आदिवासी समुदाय के लोगों के बीच आज भी स्व. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ही चर्चित हैं। वे लोग सिर्फ उन्हीं को जानते हैं और उन्हीं की योजनाओं से लाभान्वित हुए हैं। ऐसे में दोनों ही राजनीतिक पार्टी के नेताओं को यह समझना होगा कि अगर आदिवासी समुदाय के बीच खुद को स्थापित करना

आदिवासी समुदाय के लोग आज भी मूलभूत सुविधाओं की कमी से दो-चार हो रहे हैं। कभी नक्सली हमले का डर तो कभी भूख की मार। यह दोनों ही इन आदिवासी समुदाय के लोगों के लिए बड़ी चुनौती है। निश्चित ही शिवराज सरकार ने आदिवासी समुदाय के हित के लिए एक पहल करने का प्रयास किया है, लेकिन अगर यह आदिवासियों के समारोह आदिवासी इलाकों में होते तो निश्चित ही आदिवासी समुदाय के लोगों के अंदर से असुरक्षा का भाव दूर होता। इस कार्यक्रम की उपयोगिता और बढ़ जाती। अगर इस तरह के आयोजन या फिर मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री का दौरा आदिवासी इलाकों में होता रहे तो यह आदिवासी समुदाय भी खुद को मुख्य धारा का हिस्सा समझेगा।

हैं। उत्तरप्रदेश के 13 जिलों में आदिवासी अनुसूचित जनजाति श्रेणी में आते हैं और इनकी जनसंख्या राज्य की कुल आबादी का 02 प्रतिशत है। वहीं पूरे उत्तर प्रदेश में इनकी आबादी को देखें तो यह 04 प्रतिशत हो जाएगी। मणिपुर में 35.1 फ़ीसदी आदिवासी आबादी है। ऐसे में वहां सियासी तौर आदिवासी समाज की क्या महत्वपूर्णता होगी, इसका अंदाजा खुद लगाया जा सकता है। हालांकि पंजाब और उत्तराखंड में आदिवासियों की संख्या बहुत कम है लेकिन राजनीतिक दल उनको

है तो बेहतर है कि वो उनके बीच जाकर कार्य करें।

जयस की लोकप्रियता

कांग्रेस-भाजपा में नेतृत्वविहीनता के बीच कुछ सालों पहले ही चंद पढ़े-लिखे आदिवासी युवाओं द्वारा धार जिले से शुरू हुए जयस में आदिवासी वर्ग अपना नेतृत्व देखने लगा है। जयस का प्रभाव कांग्रेस-भाजपा दोनों स्वीकारते हैं। वास्तव में जयस, कांग्रेस और भाजपा दोनों के लिए खतरा है। यह पढ़े-लिखे लेकिन बेरोजगार आदिवासी युवाओं का समूह है, जिनमें आगे बढ़ने की ललक है लेकिन वे छटपटा रहे हैं कि कहां जाएं? पहले आदिवासी मुखर और साक्षर नहीं था, लेकिन नया युवा इंटरनेट और सोशल मीडिया चलाना जानता है। इसलिए जयस का प्रभाव बढ़ता दिखता है।

कांग्रेस-भाजपा में नेतृत्वविहीनता के बीच कुछ सालों पहले ही चंद पढ़े-लिखे आदिवासी युवाओं द्वारा धार जिले से शुरू हुए जयस में आदिवासी वर्ग अपना नेतृत्व देखने लगा है। जयस का प्रभाव कांग्रेस-भाजपा दोनों स्वीकारते हैं। वास्तव में जयस, कांग्रेस और भाजपा दोनों के लिए खतरा है। यह पढ़े-लिखे लेकिन बेरोजगार आदिवासी युवाओं का समूह है, जिनमें आगे बढ़ने की ललक है लेकिन वे छटपटा रहे हैं कि कहां जाएं? पहले आदिवासी मुखर और साक्षर नहीं था, लेकिन नया युवा इंटरनेट और सोशल मीडिया चलाना जानता है। इसलिए जयस का प्रभाव बढ़ता दिखता है।

लगा है। जयस का प्रभाव कांग्रेस-भाजपा दोनों स्वीकारते हैं। वास्तव में जयस, कांग्रेस और भाजपा दोनों के लिए खतरा है। यह पढ़े-लिखे लेकिन बेरोजगार आदिवासी युवाओं का समूह है, जिनमें आगे बढ़ने की ललक है लेकिन वे छटपटा रहे हैं कि कहां जाएं? पहले आदिवासी मुखर और साक्षर नहीं था, लेकिन नया युवा इंटरनेट और सोशल मीडिया चलाना जानता है। इसलिए जयस का प्रभाव बढ़ता दिखता है। हालांकि, जयस सिर्फ अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है। उसने कांग्रेस से मिलकर चुनाव लड़ा था। वह आदिवासियों का उत्थान नहीं कर सकता। उसका मकसद केवल राजनीतिक रोटियां सेंकना है। भाजपा उसे या किसी को भी चुनौती नहीं मानती। हालांकि हकीकत यह है कि पिछले विधानसभा चुनाव में भाजपा ने जयस को अपने पाले में लाने की पुरजोर कोशिश की थी लेकिन उसने कांग्रेस को चुना क्योंकि कांग्रेस ने उसकी मांगें मान लीं। तब जयस संरक्षक डॉ. हीरालाल अलावा ने कांग्रेस से मनावर सीट पर चुनाव लड़कर भाजपा की रंजना बघेल को बड़े अंतर से हराया था। जानकारों के मुताबिक, जयस का यह रुख भी भाजपा-कांग्रेस की हालिया सयिता का एक कारण है, जिससे आदिवासी, राजनीति के केंद्र में आ गया है। आदिवासी वर्ग में कांग्रेस को अपनी ज़मीन बचानी है, तो भाजपा को अपनी ज़मीन वापस पानी है। नतीजतन दोनों ज़मीन पर उतर आए हैं।

राज्य में करीब 21 फीसदी आदिवासी आबादी है, जो दो करोड़ से अधिक बैठती है। अगर चार-पांच फीसदी आदिवासी वोट भी इधर-उधर शिफ्ट हो जाए तो बहुत बड़ा अंतर डाल सकता है। खासकर भाजपा यह बात अच्छी तरह समझ रही है जो कि पिछले विधानसभा चुनाव में मुंह की खा चुकी है। शायद इसलिए ही भाजपा प्रदेशाध्यक्ष वीडी शर्मा ने पिछले दिनों घोषणा की थी कि राज्य के सभी 89 आदिवासी विकासखंडों में भाजपा की टीमें सक्रिय होकर जनजातीय वर्ग को सरकारी योजनाओं का लाभ दिलाने का कार्य करेंगी और सरकारी घोषणाएं इस वर्ग तक सही तरीके से पहुंचें, इसका ध्यान रखेंगी।

लुभाने की कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते।

आदिवासी समस्याओं पर हो नजर

भारत में मिजोरम, नगालैंड व मेघालय जैसे छोटे राज्यों में 80 से 93 प्रतिशत तक आबादी आदिवासियों की है। बड़े राज्यों में मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, बिहार, गुजरात, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में 8 से 23 प्रतिशत तक आबादी आदिवासियों की है। आजादी के 62 साल बाद भी भारत के आदिवासी उपेक्षित, शोषित और पीड़ित नजर आते हैं।

आदिवासियों को लेकर कमलनाथ की राह पर शिवराज सरकार

जब प्रदेश में कमलनाथ का नेतृत्व आया तब आदिवासियों का पूरा साथ कांग्रेस को मिला। कमलनाथ ने भी हमेशा से आदिवासियों के हक की लड़ाई लड़ने में कोई कोरकसर नही छोड़ी। उन्होंने प्रदेश के कई क्षेत्रों में आदिवासी अधिकार यात्राएं निकाली। जिसका वर्तमान शिवराज सरकार पर भी काफी असर हुआ। सरकार भी आदिवासियों की अधिकार की बातें करने लगी और आदिवासियों को लेकर कई योजनाओं की घोषणाएं की। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह को लेकर आदिवासियों के पक्ष में आयोजन करने पड़े। प्रदेश की सत्तासीन सरकार एक-एक कर आदिवासियों की हितों की बातें कर रही है। सरकार आदिवासियों को लेकर काफी सजग हो गई है। हर कार्यक्रमों में प्रमुखता से आदिवासियों की उपस्थिति, उन्हीं के बीच जाकर कार्यक्रमों का आयोजन और आदिवासी जननायकों पर केंद्रित कार्यक्रमों का आयोजन सीधे इस बात की ओर इशारा करते हैं कि सरकार इन आदिवासियों का उपयोग केवल वोटबैंक के लिए करना चाहती है।

यह बात सच है कि पूर्व सीएम कमलनाथ के नेतृत्व में आदिवासियों की सुध ली जा रही है। मजबूरन उसी राह पर शिवराज सरकार चल रही है। कमलनाथ ने एक-एक कर ऐसे मुद्दे उठाए जिससे शिवराज सरकार खुद सकते में दिखी। इसी बीच सरकार भी कांग्रेस से होड़ करने के मूड में आ गई। प्रदेश कांग्रेस की ओर से आदिवासियों को लेकर जो कार्यक्रम आयोजित किए उसके पीछे प्रदेश सरकार भी चल पड़ी। प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष कमलनाथ ने आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में आदिवासी अधिकार यात्रा कर आदिवासियों के साथ हो रहे अत्याचार का मुद्दा उठाया। इसे देख भाजपा खेमे में भी हलचल तेज हो गई। पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार ने 09 अगस्त को आदिवासी दिवस घोषित किया था, जिसे वर्तमान सरकार ने बंद कर दिया है। अब शिवराज सरकार ने 15 नबंवर को भगवान बिरसा मुंडा की जन्म दिवस को गौरव दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की।

यह भी सच है कि शिवराज सरकार का आदिवासियों के प्रति बड़ते रूझान के पीछे प्रदेश कांग्रेस और पूर्व सीएम कमलनाथ का बहुत बड़ा योगदान है। कमलनाथ के नेतृत्व में प्रदेश में आदिवासियों को लेकर जो मुददे या मसले उठाये जा रहे हैं उससे मध्यप्रदेश सरकार मजबूरन आदिवासियों के हितों के प्रति फिक्रमंद दिख रही है। पिछले दिनों ऐसे कई मामले देखने को मिले जहां सरकार से पहले विपक्षी नेताओं का ध्यान गया। भाजपा सरकार के कार्यकाल में पिछड़े वर्ग और आदिवासी वर्ग के लोगों को कई परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। फिर वो चाहे आदिवासी लोगों के साथ हुई बदसलूकी का हो या फिर उनके साथ हुई मारपीट का। इन सभी मुद्दों को सत्तारूढ़ पार्टी ने तो दरकिनार ही कर दिये थे, लेकिन पूर्व मुख्यमंत्री के नेतृत्व में इन मुद्दों को पूरी जिम्मेदारी के साथ जनता के सामने रखा। मजबूरन प्रदेश सरकार को इन मामलों को गंभीरता से लेते हुए इन पर कार्यवाही करना पड़ी। देखा जाये तो पिछले कुछ समय से कांग्रेस पार्टी विपक्ष की भूमिका बखूबी निभा रही है। उसने एक नहीं कई ऐसे मुद्दे जिन पर प्रदेश सरकार पर्दा डालने की कोशिश कर रही थी। उन मुद्दों को जनता के सामने लाने का कार्य किया है। जिसका फायदा पार्टी को आने वाले विधानसभा चुनाव में मिलने की पूरी उम्मीद है।

लगभग 89 विकासखंड जनजाति समुदाय के बाहुल्य वाले हैं। भाजपा के लिए इस जाति को साधना बहुत मुश्किल भरा रहा है। कुल मिलाकर भाजपा का पूरा फोकस इस वर्ग को अगले चुनाव में अपने पक्ष में करने का है। देश के उन राज्यों में जहां चुनाव हैं, वहां भी इस वर्ग के लोगों के भी साधने का प्रयास है।

राजनीतिक पार्टियाँ और नेता आदिवासियों के उत्थान की बात करते हैं, लेकिन उस पर अमल नहीं करते। यह 2009 के आम चुनाव में साफ दिख रहा है। किसी भी राजनीतिक दल ने न तो अपने घोषणा-पत्र में आदिवासियों से जुड़े मुद्दे

बहुसंख्यक आदिवासी आज भी बदहाल हैं

आज भी जब भी और जहां भी विकास की बात होती है, आदिवासी सहम और डर जाते हैं, सरकार पर विश्वास नहीं होता। पहले ही आदिवासी इतना भुगत चुके हैं कि इससे उबर तक नहीं पाये। विकास होना चाहिए, लेकिन आदिवासियों को उजाड़ने की कीमत पर नहीं। आदिवासी का एक वर्ग पढ़-लिखकर नौकरियों में भी आया है, लेकिन ये पूरे आदिवासी समाज का चेहरा नहीं हैं। बहुसंख्यक आदिवासी आज भी बदहाल हैं, सरकार इनके लिए जो भी कानून या अधिकार देने की बात करती है, वह ग्रास रूट तक नहीं पहुंच पाता। वन अधिकार का कानून आया, लेकिन उसको लागू करने में राज्यों ने रुचि नहीं दिखायी। आदिवासियों या मूलवासियों को जंगल पर अधिकार नहीं मिला। हम नौ अगस्त को अंतरराष्ट्रीय आदिवासी दिवस मनाते हैं, लेकिन इसमें भारत सरकार का क्या योगदान है? अफसोस की बात तो यह है कि आदिवासियों को अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के महत्व और उपयोगिता के बारे में अवगत कराने वाला कोई विशेष अवसर या आयोजन नहीं है? उन्हें तो दो वक्त की रोटी जुटाने की जद्दोजहद से फुर्सत ही नहीं मिलती कि वे समझ सके कि आदिवासी संस्कृति एवं जीवनशैली का संदेश क्या है। भारत के आदिवासी समुदाय के समग्र विकास, कल्याण और अधिकारों की रक्षा के लिए योजनाबद्ध ढंग से काम किये जाने की अपेक्षा है। ताकि आदिवासी मुख्यधारा में आकर अपने समक्ष खड़े ढेर सारे सवालों को हल कर सकें, लेकिन हैरत की बात है कि आदिवासियों के सारे सवाल आज और ज्यादा जटिल होकर खड़े हैं। आदिवासी उपेक्षा का ही परिणाम है कि आदिवासियों के हिस्से में ऐसे अवसर नहीं के बराबर आए जिन पर वे खुल कर खुशी जाहिर कर सके। इन वर्षो में राजनीतिक दलों ने अपनी विश्वसनीयता निरन्तर खोयी है और स्वार्थ की राजनीति के कारण नियम-कानून तोडे-मरोड़े जाते रहे हैं। चाहे वह जल, जंगल, जमीन से सम्बन्धी कानून हो या फिर विभिन्न नीतियों से सम्बन्धित कानून, सबमें सबसे ज्यादा नुकसान आदिवासियों को ही उठाना पड़ा है। आज आदिवासी समुदाय अपनी पहचान, भाषा, संस्कृति, संसाधनों पर हक के लिए अन्य समस्याओं के साथ संघर्ष कर रहा है।

आज देश के आदिवासियों के पक्ष को सुनने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। अनेक आदिवासी क्षेत्रो में तो आदिवासियों का संहार कर उनके अस्तित्व को ही मिटा दिया है। जिन क्षेत्रों में भी आदिवासी बचे हुए हैं, उन्हें अपने अस्तित्व के लिये व्यापक संघर्ष करने पड़ रहे हैं। कुछ क्षेत्रों एवं आदिवासी समुदायों में स्थितियां इतनी बिकराल हो चुकी है कि वे नक्सलवाद की तरफ बढ़ रहे हैं।

उठाए और न ही चुनाव अभियान में उनके हित की बात उठा रहे हैं। आदिवासी किसी राज्य या क्षेत्र विशेष में नहीं हैं, बल्कि पूरे देश में फैले हैं। ये कहीं नक्सलवाद से जूझ रहे हैं तो कहीं अलगाववाद की आग में जल रहे हैं। जल, जंगल और जमीन को लेकर इनका शोषण निरंतर चला आ रहा है। ऐसे में राष्ट्रीय मुद्दे- आतंकवाद, स्विस बैंक से कालाधन वापस लाने, महंगाई, स्थिर और

ज्यादा जोखिम, कम मजदूरी और शोषण का शिकार आदिवासी

मजबूत सरकार के नाम पर जनता से वोट बटोरने की नीति को महज राजनीतिक स्टंट ही कहा जाएगा। देश के लगभग 07 करोड़ आदिवासियों की अनदेखी कर तात्कालिक राजनीतिक लाभ देने वाली बातों को हवा देना एक परंपरा बन गई है।

राजनीतिक पार्टियाँ अगर सचमुच में देश का विकास चाहती हैं और आखिरी व्यक्ति तक लाभ पहुँचाने की मंशा रखती हैं तो आदिवासी हित और उनकी समस्याओं को हल करने की बात पहले करना होगी। देश में अभी भी आदिवासी दोयम दर्जे के नागरिक जैसा जीवन-यापन कर रहे हैं। नक्सलवाद हो या अलगाववाद, पहले शिकार आदिवासी ही होते हैं। उड़ीसा के कंधमाल में धर्मांधता के शिकार आदिवासी हुए। छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड में

राजनीतिक पार्टियाँ और नेता आदिवासियों के उत्थान की बात करते हैं, लेकिन उस पर अमल नहीं करते। यह 2009 के आम चुनाव में साफ दिख रहा है। किसी भी राजनीतिक दल ने न तो अपने घोषणा-पत्र में आदिवासियों से जुड़े मुद्दे उठाए और न ही चुनाव अभियान में उनके हित की बात उठा रहे हैं। आदिवासी किसी राज्य या क्षेत्र विशेष में नहीं हैं, बल्कि पूरे देश में फैले हैं। ये कहीं नक्सलवाद से जूझ रहे हैं तो कहीं अलगाववाद की आग में जल रहे हैं। जल, जंगल और जमीन को लेकर इनका शोषण निरंतर चला आ रहा है। ऐसे में राष्ट्रीय मुद्दे- आतंकवाद, स्विस बैंक से कालाधन वापस लाने, महंगाई, स्थिर और मजबूत सरकार के नाम पर जनता से वोट बटोरने की नीति को महज राजनीतिक स्टंट ही कहा जाएगा। देश के लगभग 07 करोड़ आदिवासियों की अनदेखी कर तात्कालिक राजनीतिक लाभ देने वाली बातों को हवा देना एक परंपरा बन गई है।

आदिवासी सेनानियों की वीरगाथाएं जो कभी मुख्यधारा में ना आ सकीं

जब हम आज़ादी की बात करते हैं तो किसके चेहरे हमारे सामने आते हैं? गाँधी, नेहरू, भगत सिंह, सरदार पटेल, सरोजिनी नायडू, सुभाष चंद्र बोस, ये नाम हमारी याददाश्त में सबसे आगे हैं। स्कूल, कॉलेज, यहां तक की राष्ट्रपति भवन और संसद में भी इन्हीं लोगों की तस्वीरें लगाई गई हैं। तो आईए याद करते हैं ऐसे वीर आदिवासी स्त्री और पुरूषों को, जिनकी आज़ादी की जंग और बलिदान अपने आप में एक मिसाल हैं। जिस इतिहास को लोग भूल रहे हैं, उसे उजागर करते हैं। आदिवासी वीरों का जब नाम लिया जाता है तो भगवान बिरसा मुंडा का नाम सबसे ऊंचा है। 19वीं सदी में, 24 वर्ष की आयु में ही ब्रिटिशों के खिलाफ किया गया उनका उनगुलान उन्हें एक अलग पायदान पर खड़ा करता है। साथ-साथ 1784 में ब्रिटिशों और ज़मींदारों के खिलाफ तिलका मांझी के विरोध और बलिदान को कौन भूल सकता है? आजादी की लड़ाई में झारखंड के आदिवासी ंतिकारियों की भूमिका अविस्मरणीय है। अंग्रेजों के विरुद्ध सबसे पहले विद्रोह करने वाले झारखंड के आदिवासी क्रांतिकारी ही थे। इनमें बिरसा मुंडा, सिदो-कान्हू, तिलका मांझी, वीर तेलंगा खड़िया, नीलांबर-पीतांबर आदि नायक बनकर उभरे। वहीं कई छोटे विद्रोहों, संघर्षो व उनके नायकों की दास्तान अनकही रह गई। दरअसल, वे गुप्त तरीके से योगदान देते रहे और देश को आजादी की राह पर ले जाने के लिए संघर्ष करते रहे। यही कारण था कि उनका संघर्ष और साहस इतिहास के पन्नों का हिस्सा नहीं बन सका। गुमनामी के शिकार ऐसे नायकों में वीर शहीद बुधु भगत का नाम प्रमुख है। वीर बुधु भगत लरका और कोल विद्रोह के नायक थे। उन्होंने शोषण, दमन और अत्याचार का मुखर विद्रोह किया और जनजातीय समाज में राष्ट्रीय चेतना की स्थापना की।

तो चलिए कुछ ऐसे ही वीरों की बात करते हैं, जिनके बारे में कम ही लोग जानते हैं।

जननायक बिरसा मुंडा

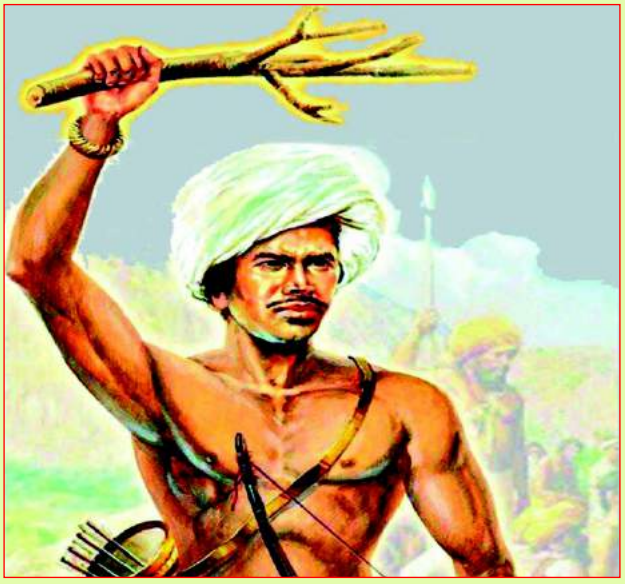

क्रांतिकारी चिंतन से जनजातीय समाज को नई दिशा देने वाले क्रांतिकारी बिरसा मुण्डा का जन्म 15 नवम्बर 1875 को रांची जिले के उलिहातु गांव में हुआ था। उन्हें मालूम चला कि गरीब वनवासियों को स्कूल शिक्षा के नाम पर ईसाई धर्म के प्रभाव में लाया जा रहा है। उन्होंने अपने धर्म के संकट को महसूस किया। बिरसा ने वनवासी अस्मिता और संस्कृति बचाने के लिए उनगुलान क्रांति शुरू की। जिसमें उनके साथ 05 हजार से अधिक जनजाति वीरों ने तीर-कमान उठा लिये और अपने धर्म की रक्षा के लिए कदम आगे बढ़ाए।

आदिवासी नक्सलवाद की त्रासदी झेल रहे हैं। मेघालय, नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश और कुछ आदिवासी बहुल प्रांतों में यह समुदाय अलगाववाद का शिकार समय-समय पर होता रहता है। नक्सलवाद की समस्या आतंकवाद से कहीं बड़ी है। आतंकवाद आयातित है, जबकि नक्सलवाद देश की आंतरिक समस्या है। यह समस्या देश को अंदर ही अंदर घुन की

टंट्या भील

टंट्या भील का जन्म सन् 1842 में पश्चिमी निमाड़ के विरी गांव में हुआ था। इन्हें तांतिया मामा के नाम से भी जाना जाता है। भील जनजाति के लोग टंट्या भील की एक देवता की तरह पूजा करते हैं। उन्हें गुरिल्ला युद्ध पद्धति में निपुणता हासिल थी। टंट्या भील को 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का आदिवासी जननायक कहा जाता है। अंग्रेज़ों ने उन्हें गिरफ्तार कर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। जिसके तहत 04 दिसंबर 1889 को टंट्या भील को फांसी दे दी गई। टंट्या भील को अंग्रेज इंडियन रोबिनहुड के नाम से बुलाते थे। मध्यप्रदेश शासन द्वारा शिक्षा एवं खेल क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन करने वाले आदिवासी युवा को जननायक टंट्या भील सम्मान प्रदान किया जाता है।

शंकर साह

गढ़ मंडला के गोंड शासक शंकर शाह का जन्म सन् 1783 में हुआ था। जबलपुर में 1857 की क्रांति का नेतृत्व शंकर शाह ने किया था। अंग्रेज़ों ने अपने मुखबिरों और राजा शंकर शाह के गद्दारों के साथ मिलकर 14 सितंबर 1857 को राजा शंकर शाह, कुंवर रघुनाथ शाह और अन्य क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर लिया। राजा शंकर शाह और रघुनाथ शाह पर देशद्रोह का मुकदमा दायर किया गया। 18 सितंबर 1857 को दोनों को तोप के मुंह पर बांध कर तोप चला दी गई।

संग्राम शाह

संग्राम शाह (1482-1532) गोंड वंश के 48वे शासक थे। संग्राम शाह का मूल नाम अमन दास था। 52 गढ़ों यानि किलों को जीतने के बाद इन्होंने खुद को संग्राम शाह की उपाधि दी।

रानी दुर्गावती

रानी दुर्गावती गोंड शासक दलपत शाह की पत्नी थीं। दलपत शाह की मृत्यु के बाद रानी दुर्गावती ने 16 साल (1548-1564) तक शासन किया। 24 जून 1564 को मुगलों से लड़ते हुए वीरांगना रानी दुर्गावती शहीद हो गईं।

झलकारी बाई

झलकारी बाई का जन्म कोरी समाज में 22 नवंबर 1830 को झांसी के पास स्थित भोजला गांव में हुआ था। झलकारी बाई महारानी लक्ष्मीबाई की सहायक थीं। ह्यूरोज ने पीर अली और दुल्हाजू की सहायता से झलकारी बाई को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन झलकारी बाई उनकी पकड़ से भाग निकलीं और 4 अप्रैल 1857 को स्वयं ही अपने पेट में बरछी घोंप कर अपने प्राण दे दिए। झलकारी बाई का समाधि स्थल ग्वालियर में स्थित है।

तरह खोखला करती जा रही है। नक्सली वारदातों के चलते छत्तीसगढ़ में बस्तर इलाका एक टापू बन गया है। वहाँ के आदिवासी न चाहते हुए भी नक्सलियों को सहयोग करने को विवश हैं। बस्तर का कुछ इलाका ऐसा है, जहाँ फोर्स भी नहीं घुस सकती। राजनीतिक पार्टियों को बाहरी ताकतों से लड़ने की बातें छोड़कर पहले देश की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास

रानी अवंतीबाई

रानी अवंती बाई का जन्म लोधी वंश में 16 अगस्त 1831 को सिवनी जिले के मनकेड़ी गांव में हुआ था। मात्र 17 वर्ष की आयु में रानी अवंती बाई का विवाह रामगढ़ रियासत, मंडला के राजा विक्रमादित्य के साथ हुआ था। राजा विक्रमादित्य के निधन के बाद रानी अवंती बाई ने राज-भार संभाला। देवहारगढ़ के जंगल में रानी अवंती बाई और अंग्रेज़ो के बीच युद्ध हुआ। इसी युद्ध के दौरान 20 मार्च 1858 को रानी अवंती बाई ने अंग्रेज़ों के हाथ लगने के बजाए खुद को अपनी ही तलवार से शहीद कर लिया। रानी अवंती बाई 1857 की क्रांति में शहीद होने वाली प्रथम महिला वीरांगना थीं। रानी अवंती बाई की समाधि डिंडोरी जिले के साहपुर के पास बालपुर गांव में स्थित है।

सरदार गंजन सिंह कोरकू

गंजन सिंह कोरकू का जन्म बैतूल जिले के घोड़ा डोंगरी के पास छतरपुर गांव में हुआ था। महात्मा गांधी जी के कहने पर 1930 में गंजन सिंह कोरकू ने घोड़ाडोंगरी जंगल सत्याग्रह में आदिवासियों का नेतृत्व किया। इस जंगल सत्याग्रह को दुरिया जंगल सत्याग्रह भी कहा जाता है। गंजन सिंह कोरकू का देहांत सन् 1963 में हुआ।

भीमा नायक

भीमा नायक भील जनजाति के एक प्रमुख नेता थे। इन्होंने बड़वानी जिले के सेंधवा क्षेत्र में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया। भीमा नायक का जन्म सन् 1840 में मध्य प्रदेश के पश्चिमी निमाड़ रियासत के तहत आने वाले जिले बड़वानी के पंचमोहली गांव में हुआ था। 1857 के अंबापानी के युद्ध में भीमा नायक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अंग्रेज़ों ने मुखबिरों के सहयोग से 2 अप्रैल 1868 को भीमा नायक को सतपुड़ा के जंगलों में से पकड़ लिया। और उन्हें कालापानी की सजा के लिए अंडमान निकोबार भेज दिया। भीमा नायक को 29 दिसंबर 1876 में अंडमान में ही फांसी दे दी गई।

संथाल विद्रोह

संथाल विद्रोह अगुवाई सिदो, कान्हू, चांद, भैरव, उनकी बहन फूलो और झानो मुर्मू ने 1855 में की। यह विद्रोह आज के झारखंड और बंगाल राज्य के पुरुलिया और बांकुरा में हुआ था। अंग्रेज़ों और ज़मींदारों के खिलाफ यह विद्रोह हुआ था। जब आदिवासी खेती करते, तो जमींदार उन्हें इतने ऊंचे स्तर पर

और रणनीति बनाना चाहिए। उनके वादे देश को आंतरिक रूप से मजबूत करने के होने चाहिए। अन्यथा चीन और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देशों को देश को अस्थिर करने का मौका मिलता रहेगा। केंद्र सरकार आदिवासियों के नाम पर हर साल हजारों करोड़ रुपए का प्रावधान बजट में करती है। इसके बाद भी 07 दशक में उनकी आर्थिक स्थिति, जीवन स्तर में कोई बदलाव नहीं

अवंती बाई

भीमा नायक

ब्याज़ देते कि वे उसे कभी चुका नहीं पाते। इसके बाद उन्हें बंधुवा श्रम (बोंडेड लेबर) की तरह रखते। इसी के खिलाफ यह विद्रोह किया गया था। जब 1855 में विद्रोह की चिंगारी भड़की, तब 20,000 आदिवासियों ने आज़ादी के लिए संघर्ष किया।

रानी गाइदिन्ल्यू

1932 में अंग्रेज़ों के खिलाफ आंदोलन में नागालैंड की रानी गाइदिन्ल्यू ने मात्र 13 साल की आयु में संघर्ष शुरू किया था। महिला सेनानियों में उन्होंने सबसे लंबी जेल सज़ा भुगती। नेहरू ने उनके बारे में लिखा था, उस बहादुर लड़की ने अपने देश भक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी है, मगर उसे कितनी यातना और कितनी पीड़ा सहनी पड़ रही है। अफ़सोस यह है कि भारत आज अपने इस बहादुर बिटिया के बारे में कम ही जनता है। 1931 में जब उनके छोटे भाई को अंग्रेज़ों ने फांसी दी, तब रानी कबीले की मुखिया बनी। अंग्रेज़ों की फौज और असम राइफल से उनकी और उनके लोगों की कई मुठभेड़ हुई। जिसके बाद रानी गाइदिनल्यू को गिरफ्तार कर लिया गया। 1946 में जब अंतरिम सरकार का गठन हुआ, तब प्रधानमंत्री नेहरु के निर्देश पर रानी गाइदिनल्यू को जेल से रिहा कर दिया गया। तब तक यह दिलेर लड़की 14 साल जेल में काट चुकी थी।

ताना भगत आंदोलन

ताना भगत आंदोलन नेतृत्व 24 साल के युवा जतरा ओराओं ने गुमला जिले के चिंगरी नवटोली गांव से किया था। यह फिर पूरे छोटा नागपुर क्षेत्र में फैल गया। वे अंग्रेज़ों द्वारा लगाए कर (टैक्स) का विद्रोह कर रहे थे। साथ ही वे ज़मींदारों और बनियों के खिलाफ भी थे, जिन्होंने उनकी भूमि पर अवैध कब्ज़ा कर उनसे पैसा वसूल रहे थे।

रम्पा आंदोलन

अल्लुरी सीतारमण राजू ने रम्पा आंदोलन की शुरुआत की। 1882 में अंग्रेज़ सरकार द्वारा जो मद्रास फॉरेस्ट एक्ट लागू किया गया था, उसी के खिलाफ यह आंदोलन था। इस एक्ट के अनुसार आदिवासियों का जंगल में प्रवेश और जंगल की चीज़ों का इस्तेमाल वर्जित था। यह आंदोलन पूर्वी गोदावरी, विशाखापत्तनम और मद्रास के इलाकों में फैला था। स्थानीय लोग राजू को /मन्यम वीरूडू/ कहते थे जिसका मतलब है, /जंगल का नायक/। इस विद्रोह का प्रमुख कारण मनसबदारों

आया है। स्वास्थ्य सुविधाएँ, पीने का साफ पानी आदि मूलभूत सुविधाओं के लिए वे आज भी तरस रहे हैं।

भारत को हम भले ही समृद्ध विकासशील देश की श्रेणी में शामिल कर लें, लेकिन आदिवासी अब भी समाज की मुख्य धारा से कटे नजर आते हैं। इसका फायदा उठाकर नक्सली उन्हें अपने से जोड़ लेते हैं। कुछ राज्य सरकारें आदिवासियों

टाना भगत

की मनमानी, उनका भ्रष्टाचार और समाज में जंगल कानून का व्याप्त होना था।

सुरेन्द्र साए

ऐसे ही एक और महानायक रहे हैं सुरेन्द्र साए। 23 जनवरी, 1809 को जन्में सुरेन्द्र साए भारत के पहले स्वतंत्रता सेनानी और आदिवासी अगुवाओं में गिने जाते हैं। ओडिशा के सम्भलपुर से 21 किलोमीटर दूर उनका गांव था। राजा मधुकर साए के देहांत के बाद, सुरेन्द्र साए सही वंशज थे लेकिन अंग्रेज़ों ने यह पद चौहान वंश के नारायण सिंह को दिया। सुरेन्द्र साए ने इसका विद्रोह किया जिसमें गाँव और राज्य के लोगों ने समर्थन दिया। 1837 में सुरेन्द्र साय, उदन्त साय, बलराम सिंह तथा लखनपुर के जमींदार बलभद्र देव मिलकर कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे कि अंग्रेज़ों ने वहां अचानक धावा बोल दिया। उन्होंने बलभद्र देव की वहीं निर्ममता से हत्या कर दी, पर बाकी तीनों लोग बचने में सफल हो गए। इसके बाद लगातार साए को पकड़ने की कोशिशें चलती रहीं। 1840 में साए अंग्रेज़ों के गिरफ्त में आ भी गए लेकिन इनके समर्थक शान्त नहीं बैठे। 1857 को हज़ारों क्रान्तिवीरों ने हज़ारीबाग जेल पर धावा बोला और सुरेन्द्र साए सहित 32 साथियों को छुड़ा कर ले गए। इसके बाद सुरेन्द्र साए वापस सम्भलपुर पहुंचे और अपने राज्य को अंग्रेज़ों से मुक्त कराने के लिए सशस्त्र संग्राम शुरू कर दिया। 23 जनवरी, 1864 को जब सुरेन्द्र साए अपने परिवार के साथ सो रहे थे, तब अंग्रेज़ों ने छापा मारकर उन्हें पकड़ लिया और नागपुर के असीरगढ़ जेल में बन्द कर दिया। जेल में भरपूर शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न के बाद भी सुरेन्द्र ने विदेशी शासन के आगे झुकना स्वीकार नहीं किया। अपने जीवन के 37 साल जेल में बिताने वाले उस वीर ने 28 फरवरी, 1884 को असीरगढ़ किले की जेल में ही अन्तिम सांस ली। आज भी उनकी बहादुरी उन्हें लोगों के दिल में ज़िंदा रखती है।

वीरसा गोंड

वीरसा गोंड नर्मदा घाटी क्षेत्र में स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख क्रांतिकारी आदिवासी नेता थे। 19 अगस्त 1942 को वीरसा गोंड और अन्य क्रान्तिकारियों ने मिलकर बैतूल जिले के घोड़ा डोंगरी शाहपुर क्षेत्र के रेलवे स्टेशन पर आंदोलन किया। इस दौरान पुलिस द्वारा बिना चेतावनी दिए गोली चलाने के कारण वीरसा गोंड की मृत्यु हो गई।

जंगगढ़ सिंह श्याम

जंगगढ़ सिंह श्याम का जन्म डिंडोरी जिले के पाटनगढ़ में 1962 में हुआ था। वह गोंड जनजाति की उपजाति परधन गोंड से थे। जंगगढ़ सिंह श्याम एक गोंड चित्रकार थे। इन्होंने गोंड चित्रकला में सर्वप्रथम कागज और कैनवास का उपयोग किया। गोंड चित्रकला में हुए इस नए उपयोग को जंगगढ़ कलाम कहा गया। इसलिए इन्हें भारतीय कला के एक नए स्कूल जंगगढ़ कलाम का निर्माता माना जाता है। जंगगढ़ सिंह श्याम के चित्रों में गोंड देवताओं की प्रमुखता रही है। जंगगढ़ सिंह श्याम को 1986 में शिखर सम्मान से नवाजा गया। जंगगढ़ सिंह श्याम का देहांत 2001 में जापान में स्थित मिथिला संग्रहालय में हुआ।

को लाभ पहुँचाने के लिए उनकी संस्कृति और जीवन शैली को समझे बिना ही योजना बना लेती हैं। ऐसी योजनाओं का आदिवासियों को लाभ नहीं होता, अलबत्ता योजना बनाने वाले जरूर फायदे में रहते हैं। महँगाई के चलते आज आदिवासी दैनिक उपयोग की वस्तुएँ भी नहीं खरीद पा रहे हैं। वे कुपोषण के शिकार हो रहे हैं। अतः देश की करीब आठ फीसद आबादी

5000 का कर्ज और पीढ़ियों की गुलामी आदिवासी गांवों की यही कहानी

(आदिवासियों की) पर विशेष ध्यान देना होगा। आम चुनाव में राष्ट्रीय मुद्दे गौण होते जा रहे हैं। स्थानीय मुद्दे और प्रत्याशियों की छवि ज्यादा असरकारक हो रही है। यही वजह है कि कई राज्यों में क्षेत्रीय दल मजबूती के साथ उभर कर सामने आ रहे हैं। देश की आंतरिक समस्या से राजनीतिक पार्टियों को सीधा वास्ता रखना होगा। जाति समीकरण और व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप की बदौलत न तो कोई लहर पैदा की जा सकती है और न ही मतदाताओं में जोश जगाया जा सकता है। आदिवासियों, आम नागरिकों से जुड़े मुद्दे राजनीतिक पार्टियों को घोषणा-पत्र और भाषणों में शामिल करना होगा। तभी जनता की आस्था लोकतंत्र पर बढ़ेगी और घरेलू समस्याओं का खात्मा किया जा सकेगा।

संकट में आदिवासी

स्वास्थ्य एवं कुपोषण की समस्या आर्थिक पिछड़ेपन एवं असुरक्षित आजीविका के साधनों के चलते ही गंभीर हो चली है। सबसे पहले तो, जनजातीय समुदायों की भूमि और वन अधिकारों की रक्षा करने की जरूरत है, ताकि उनकी

आदिवासियों का इतिहास

इतिहास साक्षी है कि सबसे पहले आदिवासी से सभ्य नागरिक बनने के प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता (हड़प्पा और मोहनजोदड़ो) से मिले हैं और यह भी सिद्ध हो चुका है कि सिंधु घाटी सभ्यता यहां के मूल निवासियों और जनजातियों की एक विकसित शहरी सभ्यता थी। लेकिन, आज भी भारत की जनजातियों (ट्राइब्स) को आदिवासी कहा जाता है। आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिल कर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत (10 करोड़) जितना एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका कहा गया है (संस्कृत ग्रंथों में)। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन (पहाड़ पर रहने वाले लोग) कह कर पुकारा है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में भीलाला, धानका, गोंड, मुण्डा, खड़िया, हो, बोडो, कोल, भील, कोली, फनात, सहरिया, संताल, मीणा, उरांव, लोहरा, परधान, बिरहोर, पारधी, आंध, टाकणकार आदि हैं।

भारत में आदिवासियों को प्रायः जनजातीय लोग के रूप में जाना जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान आदि में बहुसंख्यक व गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक है जबकि भारतीय पूर्वोत्तर राज्यों में यह बहुसंख्यक हैं, जैसे मिजोरम। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता दी है। अक्सर इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी अनुसूचित जाति एवं जनजाति में रखा जाता है।

आजीविका, जीवन और आजादी की हिफाजत हो सके। जनजातीय भूमि के प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार को संरक्षित किया जाना सबसे जरूरी है। आदिवासियों पर जुल्म और शोषण का लंबा इतिहास रहा है और समय-समय पर कई रूपों में यह सामने आता रहा है। लेकिन, आदिवासियों में भुखमरी अब एक बड़े संकट के रूप में उभर कर सामने आ रही है। हाल में झारखंड के बोकारो में भूखल घासी नामक एक व्यक्ति की मौत ने फिर से साबित किया कि सरकारें आदिवासियों की सुरक्षा के मोर्चे पर विफल रही है। घासी के परिवारजनों का कहना है कि पिछले कई दिनों से उनके घर में खाने के लिए कुछ नहीं था। हालांकि, यह ऐसी कोई पहली घटना नहीं है। झारखंड से ऐसे मामले लगातार आ रहे हैं। नवंबर, 2018 में पश्चिम बंगाल में कुपोषण के कारण सात

आदिवासियों की मौत हो गई थी और मामला चर्चा में रहा था। 2019 में भी भूख के चलते आदिवासियों की मौत की खबरें रोशनी में आती रहीं।

एक अनुमान के मुताबिक 1967 के बाद से अब तक केवल झारखंड में भूख की वजह से लाखों आदिवासियों की मौत हो चुकी है। कहने की जरूरत नहीं कि देशभर में अब तक न जाने कितने आदिवासी भुखमरी के कारण अपनी जान गंवा चुके हैं। इस अनचाही मौत का सिलसिला दशकों से थमने का नाम नहीं ले रहा है। हर साल देश भर में ऐसे दर्जनों मामले सामने आते हैं जब पर्याप्त खाने की कमी के कारण आदिवासी दम तोड़ देते हैं। लेकिन, विडंबना है कि हमेशा ही

सरकारें और प्रशासनिक अमला कुछ और ही सच्चाई बयां करते हुए दिखता है। साल 2018 में जब पश्चिम बंगाल के झाड़ग्राम में सबर और लोधा समुदाय के सात व्यक्तियों की मौत हुई थी, तब भी मुख्य वजह पर्याप्त भोजन का उपलब्ध न हो पाना थी। लेकिन, सरकार ने क्षय रोग को मौत का कारण बता कर पल्ला झाड़ लिया था। इसमें कोई दो राय नहीं कि पोषणयुक्त आहार की कमी आदिवासियों की मौत की सबसे बड़ी वजह है। लेकिन, सवाल है कि उन्हें पोषणयुक्त आहार क्यों नहीं मिल रहा? दरअसल यह सबसे बड़ा सवाल है और इन्हीं सवालों के जवाब तलाश कर ही किसी निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (2015-16) के अनुसार महाराष्ट्र के जनजातीय क्षेत्रों में प्रत्येक दूसरे बच्चे का विकास अवरुद्ध होने का कारण लंबे समय तक भूखे रहने से उत्पन्न कुपोषण की समस्या है। पर्याप्त पोषण आहार की कमी का ही नतीजा है कि आदिवासियों की जीवन प्रत्याशा चौंकाने वाली है।

पश्चिम बंगाल के एक हजार आदिवासी परिवारों पर किए गए एक अध्ययन की बात करें तो यह पाया गया कि आदिवासी आबादी को चयनात्मक रूप से भुला दिया गया है और सार्वजनिक और शैक्षणिक दोनों ही क्षेत्रों में इनके बारे में जो भी जानकारी है, उसमें बड़ी खाई व्याप्त है। वे कौन हैं, वे कहां रहते हैं, वे क्या करते हैं, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति क्या है, उनकी सांस्कृतिक और भाषायी प्रथाएं क्या हैं, ये सभी ऐसे सवाल हैं जिनके प्रचलित उत्तर खंडित और अस्पष्ट हैं। जानकारी का यह अंतर आदिवासियों को लोकतांत्रिक रूप से उपेक्षा की तरफ ले जाता है। बाहरी दुनिया द्वारा थोप दी गई श्रेष्ठता का ही परिणाम है कि आदिवासियों ने खुद को हीन, आदिम मान लिया है और यहां तक कि अपने जीवन के प्रति उनका एक घातक दृष्टिकोण भी पैदा हो गया है। ये सभी पहलू

उन्हें हाशिए पर धकेल देते हैं, यहां तक कि उन्हें सामाजिक रूप से एकजुट करने वाले कुछ रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक प्रथाओं को विशेष रूप से लोकतांत्रिक मानदंडों और मानवीय मूल्यों को छोड़ देने पर मजबूर कर देता है जो सामूहिक जीवन की एक लंबी यात्रा और अस्तित्व के लिए संघर्ष के माध्यम से विकसित हुए हैं। सबसे पहले तो, जनजातीय समुदायों की भूमि और वन अधिकारों की रक्षा करने की जरूरत है, ताकि उनकी आजीविका, जीवन और आजादी की हिफाजत हो सके। जनजातीय भूमि के प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार को संरक्षित किया जाना सबसे

इसलिए चाहिए आदिवासियों का साथ

2 करोड़ आबादी

43 आदिवासी समूह

60 लाख भील-भिलाला

51 लाख गोंड समुदाय

12 लाख कोल समाज

जरूरी है। दूसरी ओर, आदिवासी परिवारों में भोजन का संकट वन आजीविका पर उनकी पारंपरिक निर्भरता में कमी और राय में गहन कृषि संकट के कारण उत्पन्न होता है। इसके अलावा, व्यवस्थित मुद्दों और सार्वजनिक पोषण कार्यमों की कमजोरी ने समस्या को और अधिक गंभीर बना दिया है।

पिछले 10 वर्षो में हजारों एकड़ जमीन छिनी

पिछले 10 वर्षो में आदिवासियों की जमीनें सरकारों ने छीनी है। जंगलों में रहने वाले इन आदिवासियों से इनके जंगल छीन लिए गए। कभी विकास के नाम पर जंगलों को काटा तो कभी उदयोगपतियों को खनिज संपदा को लूटने के लिए औने पौने दामों में जंगल की जमीनों को दिया गया। जिससे इनकी न केवल रोजी-रोटी छिनी बल्कि प्राकृतिक संपदा को भी भारी नुकसान पहुंचाया।

पलायन करने पर मजबूर हैं आदिवासी बहन-बेटियां

प्रदेश सहित देश के अधिकांश आदिवासी बाहुल्य जिलों में रहने वाले जनजातीय लोग आज भी पलायन करने को मजबूर हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है स्थानीय स्तर पर रोजगार का अभाव और नक्सलियों का डर। सिर्फ पुरूष ही नहीं बल्कि महिलाएं भी अपने जिलों को छोड़ अन्य जिलों में जाकर छोटी-छोटी राशि पर मजदूरी करने को मजबूर हैं। गांव के लोग अपनी लड़कियों को शहरों में काम करने को भेजने के लिए मजबूर है। इन आदिवासियों की अधिकतर लड़कियां दिल्ली, मुंबई, आगरा, गोवा सहित मेट्रो सिटीज में जाकर काम करती है। जहां काम के बदले मिलने वाली राशि को वे अपने घरों में भेजती है जिससे उनके परिवार के अन्य सदस्यों का पालन पोषण होता है। इतना ही नहीं आदिवासियों के मन में नक्सलियों से सुरक्षा का भय इतना अधिक है कि वो अपनी बहन-बेटियों को अपने साथ रख ही नहीं पाते। छत्तीसगढ़ में लगभग नक्सलियों के भय से लगभग 700 गांव खाली हो गए हैं। मध्यप्रदेश में बालाघाट, डिंडौरी, मंडला, धार आदि क्षेत्रों में रहने वाले बैगा, सहरिया, गोंड जनजाति से जुड़े लोग हो या फिर छत्तीसगढ़ के बस्तर, नारायणपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा, सूरजपुर, बलरामपुर, कोंडागांव, कांकेर, सरगुजा, कोरिया, कोरबा एवं जशपुर, झारखंड में निवासरत उरांव, कोरवा, आदिम, सैरिया, असुर, लोहरा, संथाल जनजाति से जुड़ी महिलाएं हो या पुरूष सभी अपना घर-परिवार छोड़ आर्थिक तंगहाली को दूर करने के लिए पलायन करने को मजबूर हैं।

नक्सली क्षेत्रों में आदिवासी लड़कियों को नक्सलियों से डर?

मध्यप्रदेश की शिवराज सरकार और केंद्र की मोदी सरकार ने भले ही 15 नवंबर को जनजातीय गौरव दिवस के रूप में घोषित किया है। लेकिन क्या सही मायने में आज भी देश व प्रदेश के आदिवासी समुदाय के लोग खुद को सुरक्षित व सम्मानित महसूस कर पा रहे हैं। यह एक बड़ा सवाल है, जिसका जबाव न तो राज्य सरकार और न ही केंद्र सरकार सही ढंग से तथ्यों के साथ देने में समर्थ है। क्योंकि मैदानी स्तर पर हालात कुछ और ही है। आजादी के 70 साल बाद आज भी आदिवासी समुदाय से जुड़े लोगों को आर्थिक, सामाजिक और सड़क, बिजली, पानी, रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं से दो-चार होना पड़ रहा है।

पलायन करने पर मजबूर है आदिवासी बहन-बेटियां- प्रदेश सहित देश के अधिकांश आदिवासी बाहुल्य जिलों में रहने वाले जनजातीय लोग आज भी पलायन करने को मजबूर है। इसका सबसे बड़ा कारण है स्थानीय स्तर पर रोजगार का अभाव और नकसलियों का डर। सिर्फ पुरूष ही नहीं बल्कि महिलाएं भी अपने

जिलों को छोड़ अन्य जिलों में जाकर छोटी-छोटी राशि पर मजदूरी करने को मजबूर है। गांव के लोग अपनी लड़कियों को शहरों में काम करने को भेजने के लिए मजबूर है। इन आदिवासियों की अधिकतर लड़कियां दिल्ली, मुंबई, आगरा, गोवा सहित मेट्रो सिटीज में जाकर काम करती है। जहां काम के बदले मिलने वाली राशि को वे अपने घरों में भेजती है जिससे उनके परिवार के अन्य सदस्यों का पालन पोषण होता है। इतना ही नहीं आदिवासियों के मन में नकसलियों से सुरक्षा का भय इतना अधिक है कि वो अपनी बहन-बेटियों को अपने साथ रख ही नहीं पाते। छत्तीसगढ़ में लगभग नकसलियों के भय से लगभग 700 गांव खाली हो गए हैं। मध्यप्रदेश में बालाघाट, डिंडौरी, मंडला, धार आदि क्षेत्रों में रहने वाले बैगा, सहरिया, गोंड जनजाति से जुड़े लोग हो या फिर छत्तीसगढ़ के बस्तर, नरायणपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा ,सूरजपुर , बलरामपुर, कोंडागांव, कांकेर, सरगुजा, कोरिया, कोरबा एवं जशपुर, झारखंड में निवासरत उरांव, कोरवा, आदिम, सैरिया, असुर, लोहरा, संथाल जनजाति से जुड़ी महिलाएं हो या पुरूष सभी अपना घर-परिवार छोड़ आर्थिक तंगहाली को दूर करने के लिए पलायन करने को मजबूर है।

नहीं मिलता सरकार की योजनाओं का लाभ- केंद्र एवं प्रदेश सरकार की तमाम योजनाएं आदिवासियों की तकदीर नहीं बदल पाई हैं। आज भी तमाम परिवार झोपड़ियों में रहने के लिए मजबूर हैं। इतना ही नहीं, आदिवासियों का पलायन रोकने में मनरेगा नाकाम साबित हो रही है। मुख्य धारा से कटे लोगों के जीवन स्तर में सुधार

लाने के मकसद से केन्द्र एवं राय सरकार द्वारा अनेक जनकल्याण की योजनाएं चलाईं जा रही हैं। इनमें प्रधानमंत्री आवास योजना, स्वच्छता मिशन अंतर्गत शौचालय निर्माण, मनरेगा, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के तहत सस्ती दरों पर अनाज, विभिन्न पेंशन योजनाएं शामिल हैं। इन योजनाओं का लाभ चंद लोगों तक ही पहुंच पा रहा है। मनरेगा में स्थानीय स्तर पर रोजगार व समय से भुगतान नहीं होने की समस्या बनी हुई है। इस कारण कई परिवार महानगरों की ओर रुख कर लेते हैं, ऐसा नहीं कि विभागीय अफसर और राय सरकारें इससे परिचित नहीं हैं लेकिन वह चुप्पी साधे रहते हैं। झोपड़ियों में रहना बारिश में सीजन में सबसे यादा कठिन हो जाता है।

आदिवासी क्षेत्रों में क्यों नहीं होते आयोजन?- केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा बड़े स्तर पर आदिवासियों से जुड़े आयोजन होते हैं। यह आयोजन उन क्षेत्रों में या शहरों में होते हैं जहां आदिवासियों की संख्या न के बराबर होती है। मतलब आयोजन करना है तो हजारों की संख्या में आदिवासियों को ढोकर आयोजन स्थल पर लाया जाता है। जिससे आयोजन तो सफल हो जाते हैं लेकिन जिन उददेश्यों के लिए आयोजन होते हैं उनकी सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा रहता है। बेहतर यह हो सकता है कि यह आयोजन यदि आदिवासी क्षेत्रों में ही किए जाए तो उस क्षेत्र का विकास होगा। आदिवासियों की समस्याओं को करीब से जानने समझने का अवसर मिलेगा। साथ ही आदिवासियों से साथ भी बेहतर जुड़ाव हो सकेगा। बड़ी संख्या में आदिवासियों की सहभागिता भी होगी। आयोजन जनांदोलन का आकार लेगा।

आगामी विस चुनाव को साधने की कोशिश- जनजातीय जननायक बिरसा मुंडा की जयंती पर जनजातीय महासम्मेलन का आयोजन आगामी विधानसभा चुनावों की तैयारियों का बिगुल है। भाजपा नेतृत्व ने साफ कर दिया है कि इस बार उसका पूरा फोकस जनजातीय क्षेत्रों में निवासरत लोगों पर है। यानि सरकार की नियत सिर्फ वोट बैंक की राजनीति पर है क्योंकि इतने साल तक इसी भाजपा सरकार ने इन्हीं जनजातीय लोगों को उपेक्षित किया है और अब वोट के लिए इन्हें मनाने की कोशिश इस महासम्मेलन के माध्यम से की जा रही है।

आदिवासी बाहुल्य छत्तीसगढ़ में बदहाल हैं आदिवासियों के हालात?

विजया पाठक

छत्तीसगढ़ में विशेष संरक्षित ही नहीं, सामान्य आदिवासियों की भी आबादी घट रही है। 2011 में हुई जनगणना में राज्य में कुल 78 लाख 22 हजार आदिवासी आबादी थी। यह राज्य की कुल आबादी का 30.62 फीसद है, जबकि 2001 में हुई जनणना में आदिवासियों की कुल आबादी 31.8 प्रतिशत थी। इस तरह अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या में 1.18 फीसदी कमी आई है। आदिवासी बाहुल्य राज्य छत्तीसगढ़ में आदिवासी आज भी जल-जंगल और जमीन की लड़ाई लड़ रहे हैं। आदिवासी समाज के लोग इस स्थिति के लिए सरकारों को जिम्मेदार ठहरा रहे हैं तो वहीं जानकर इसे समाज के जिम्मेदारों की कमजोरी की देन बता रहे हैं। ऐसे में जानते हैं कि आखिरकार छत्तीसगढ़ राज्य गठन के 19 साल बाद क्या है आदिवासियों की वास्तविक स्थिति? 32 फीसदी जनसंख्या वाले आदिवासी बाहुल्य राज्य छत्तीसगढ़ में आज भी आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति संघर्षरत दिखाई दे रहे हैं। वे बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के लिए आज भी गुहार लगाते ही दिखाई पड़ते हैं। आलम यह है कि जंगल के मालिक कहे जाने वाले आदिवासियों की स्थिति दिन प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। पांचवी अनुसूची, पेशा कानून जैसे शब्द किताबों में ही प्रबल हो रहे हैं। जबकि सूबे के 90 में से 29 विधानसभा सीट आदिवासियों के लिए आरक्षित हैं।

छत्तीसगढ़ में आज भी आदिवासी वर्ग अपने आप को उपेक्षित ही महसूस कर रहा है। वहीं सियासतदान आज भी सियासी

2011 में हुई जनगणना में राज्य में कुल 78 लाख 22 हजार आदिवासी आबादी थी। यह राज्य की कुल आबादी का 30.62 फीसद है, जबकि 2001 में हुई जनणना में आदिवासियों की कुल आबादी 31.8 प्रतिशत थी। इस तरह अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या में 1.18 फीसदी कमी आई है। आदिवासी बाहुल्य राज्य छत्तीसगढ़ में आदिवासी आज भी जल-जंगल और जमीन की लड़ाई लड़ रहे हैं। आदिवासी समाज के लोग इस स्थिति के लिए सरकारों को जिम्मेदार ठहरा रहे हैं तो वहीं जानकर इसे समाज के जिम्मेदारों की कमजोरी की देन बता रहे हैं। ऐसे में जानते हैं कि आखिरकार छत्तीसगढ़ राज्य गठन के 19 साल बाद क्या है आदिवासियों की वास्तविक स्थिति? 32 फीसदी जनसंख्या वाले आदिवासी बाहुल्य राज्य छत्तीसगढ़ में आज भी आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति संघर्षरत दिखाई दे रहे हैं।

सरगुजा, सूरजपुर और कोरबा जिले के 20 से ज्यादा गांवों के आदिवासियों हसदेव अरण्य क्षेत्र में कोयला खदान खोले जाने के खिलाफ पिछले कई दिनों से आंदोलन कर रहे हैं।

छत्तीससगढ़ की प्रमुख जनजातियां

भुंजिया- भुंजिया जनजाति का संकेन्द्रण प्रमुख रूप से राज्य के गरियाबंद, धमतरी एवं महासमुंद जिले में हैं। जनगणना 2011 अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य मे भुंजिया जनजाति की जनसंख्या 10603 है। इनमें स्त्री-पुरूष लिंगानुपात 1029 है। इनकी साक्षरता दर 50.93 प्रतिशत है जिसमें पुरूष साक्षरता 64.19 एवं स्त्री साक्षरता 38.04 प्रतिशत है।

पहाड़ी कोरवा- छत्तीसगढ़ में विशेष पिछड़ी जनजाति जशपुर, सरगुजा, बलरामपुर, तथा कोरबा जिले में निवासरत है। सर्वेक्षण वर्ष 2005-06 के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या 34122 थी। वर्तमान में इनकी जनसंख्या बढ़कर लगभग 40 हजार से अधिक हो गई है। पहाड़ी कोरवा जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कालोनिल डाल्टन ने इन्हें कोलारियन समूह से निकली जाति माना है।

बिरहोर- बिरहोर छत्तीसगढ़ की एक विशेष पिछड़ी जनजाति है। देश में इनकी अधिकांश जनसंख्या झारखंड राज्य में निवासरत है। वर्ष 2011 की जनगणना में छत्तीसगढ़ में इनकी जनसंख्या 3104 दर्शाई गई है। इनमें पुरूष 1526 एवं महिला 1578 थी। इस जनजाति के लोग छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले के धरमजयगढ़, लैलूंगा, तमनार विकासखण्ड में, जशपुर जिले के बगीचा, कांसाबेल, दुलदुला, पत्थलगांव विकासखण्डों में, कोरबा जिले के कोरबा, पोड़ी उपरोड़ा, पाली विकासखण्ड तथा बिलासपुर जिले के कोटा व मस्तूरी विकासखण्ड में निवासरत हैं।

बैगा- बैगा छत्तीसगढ़ की एक विशेष पिछड़ी जनजाति है। छत्तीसगढ़ में उनकी जनसंख्या जनगणना 2011 में 89744 दशाई गई है। राज्य में बैगा जनजाति के लोग मुख्यत: कवर्धा और बिलासपुर जिले में पाये जाते हैं। मध्य प्रदेश के डिंडौरी, मंडला, जबलपुर, शहडोल जिले में इनकी मुख्य जनसंख्या निवासरत है।

कमार- कमार जनजाति गरियाबंद जिले की गरियाबंद, छूरा, मैनपुर तथा धमतरी जिले के नगरी तथा मगरलोड विकासखण्ड में मुख्यत: निवासरत हैं। महासमुंद जिले के महासमुंद एवं बागबाहरा विकासखण्ड में भी इनके कुछ परिवार निवासरत हैं। इस जनजाति को भारत सरकार द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति का दर्जा दिया गया है। 2011 की जनगणना अनुसार राज्य में इनकी जनसंख्या 26530 दर्शित है। इनमें 13070 पुरूष एवं 13460 स्त्रियाँ हैं।

अबुझमाड़िया- अबुझमाड़िया जनजाति नारायणपुर, दंतेवाड़ा एवं बीजापुर जिले के अबुझमाड़ क्षेत्र में निवासरत हैं। ओरछा को अबुझमाड़ का प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। इस जनजाति की कुल जनसंख्या सर्वेक्षण 2002 के अनुसार 19401 थी। वर्तमान में इनकी जनसंख्या बढ़कर 22 हजार से अधिक हो गई है।

बोल कर ही इतिश्री कर रहे हैं। आज भी आदिवासी छात्र अपने अधिकारों का लाभ नहीं ले पा रहे हैं। कई इलाकों में शिक्षा की बुनियादी सुविधाएं भी उन्हें नहीं मिल रही हैं। छत्तीसगढ़ आदिवासी बाहुल्य राज्य है और राज्य की राजनीति में आदिवासी नेताओं की बड़ी अहमियत भी है। यह राजनेता राय की आदिवासी जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। भूपेश सरकार सरासर प्रदेश के आदिवासी वर्ग का अपमान करते आए हैं।

आदिवासी कर रहे आंदोलन

प्रदेश के आदिवासी अपनी परेशानियों को लेकर कई जगह आंदोलन कर रहे हैं। बीते 14 अक्टूबर से राज्य के सरगुजा, सूरजपुर और कोरबा ज़िले के बीस से ज्यादा गांवों के आदिवासी हसदेव अरण्य क्षेत्र में कोयला खदान खोले जाने के खिलाफ धरना दे रहे हैं। उनका आरोप है कि कोल ब्लॉक के लिए पेसा कानून और पांचवी अनुसूची के प्रावधानों की अनदेखी की गई है। परसा कोयला खदान हेतु पेसा कानून 1996 और पांचवीं अनुसूची के संवैधानिक प्रावधानों की अनदेखी की है। गौरतलब है कि छत्तीसगढ़ के उत्तरी भाग में करीब एक लाख सत्तर हजार हेक्टेयर में फैले हसदेव अरण्य के वन क्षेत्र में जंगलों पर उजड़ने का खतरा मंडरा रहा है। इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों ने जंगलों को बचाने के लिए मोर्चा संभाल लिया है।

दरअसल इस पूरे वनक्षेत्र में कोयले का अकूत भंडार छुपा हुआ है और यही इन जंगलों पर छाए संकट का कारण भी है। पूरे इलाके में कुल 20 कोल ब्लॉक चिह्नित हैं, जिसमें से 6 ब्लॉक में खदानों के खोले जाने की प्रक्रिया जारी है। एक खदान परसा ईस्ट केते बासेन शुरू हो चुकी है और इसके विस्तार के लिए केते एक्सटेंशन के नाम से नई खदान खोलने की तैयारी है। वहीं परसा, पतुरिया, गिधमुड़ी, मदनपुर साउथ में भी खदानों को खोलने की कवायद जारी है। इन परियोजनाओं में करीब एक हजार आठ सौ बासठ हेक्टेयर निजी और शासकीय भूमि सहित सात हजार सात सौ तीस हेक्टेयर वनभूमि का भी अधिग्रहण होना है। खदानों की स्वीकृति प्रक्रियाओं से ग्रामीण हैरान हैं और इसके विरोध में खुलकर सामने आ गए हैं। प्रभावित क्षेत्र के सैकड़ों आदिवासी व अन्य ग्रामीण लामबंद होते हुए विगत कई दिनों से अनिश्चितकालीन धरने पर बैठे हुए हैं। पिछले दिनों अपनी मांगों को लेकर बस्तर से पैदल यात्रा कर रायपुर पहुंचे आदिवासियों के लिए राजभवन के दरवाजे खोल दिए गए। राज्यपाल अनुसुइया उइके ने राजभवन के लॉन में चौपाल लगाई और करीब 300 आदिवासियों को बुलाकर उनकी समस्या सुनी। राज्यपाल ने आदिवासी क्षेत्रों में स्थित इलाकों की इस समस्या के लिए राय सरकारों को जिम्मेदार ठहराया। रायपाल ने उन्हें भरोसा दिया कि इसके कानूनी पहलुओं का अध्ययन कर नियमानुसार आवश्यक कार्रवाई की जाएगी।

मुस्लिम वर्ग के मंत्री को दिया आदिवासियों का महत्वपूर्ण विभाग

प्रदेश के इतिहास में पहली बार हुआ कि किसी मुस्लिम वर्ग के मंत्री को आदिवासियों से संबंध रखने वाले विभाग का मुखिया बनाया है। इससे पहले ऐसा कभी नहीं हुआ है। अभी तक आदिवासियों से संबंधित विभाग का मुखिया आदिवासी वर्ग का ही बना है। लेकिन भूपेश बघेल ने मोहम्मद अकबर को इस विभाग का मुखिया बनाया है। वैसे भी कांग्रेस के पास कई आदिवासी नेता थे जो चुनकर आए हैं। वर्तमान विधानसभा में कुल 29 आदिवासी विधायक चुने गए हैं लेकिन भूपेश बघेल ने केवल तीन को ही मंत्री बनाया है। जबकि सब जानते हैं कि राज्य का गठन ही आदिवासियों के हकों के लिए हुआ है। यह ऐसे फैसले हैं जो दर्शाते हैं कि भूपेश बघेल को आदिवासियों से कितना मोह है।

चरम पर सत्ता-सियासत की जोर आजमाईस

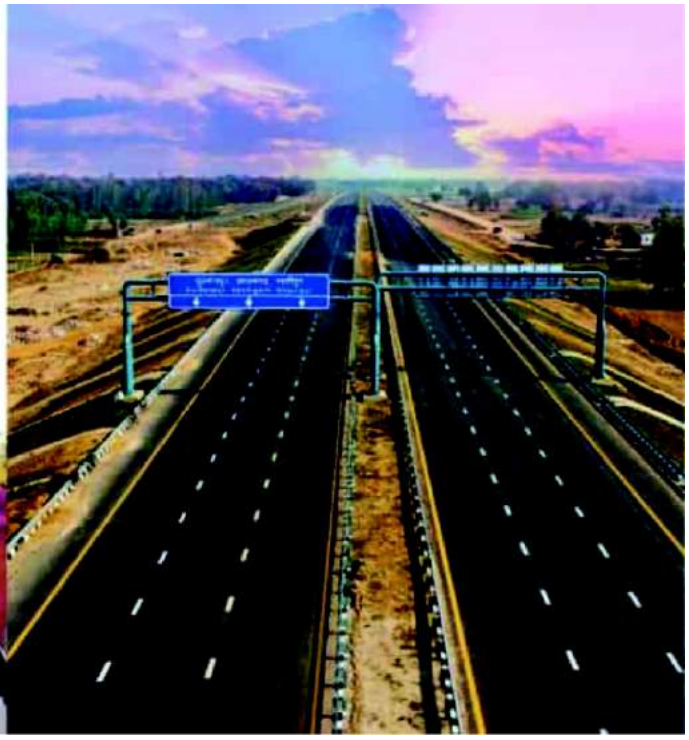

समता पाठक

उप्र में विधानसभा चुनाव सिर पर हैं। उत्तरप्रदेश के विधानसभा चुनाव में भाजपा ने पूरी ताकत लगा दी है। पार्टी को उम्मीद है कि इस चुनाव में उसे न केवल स्थानीय मुद्दे, बल्कि राष्ट्रीय मसलों पर भी लोगों का समर्थन मिलेगा। भाजपा को यकीन है कि मुख्यमंत्री योगी खुद को इस चुनाव में अपराजेय साबित कर देंगे। उत्तरप्रदेश में भाजपा अयोध्या से लेकर कश्मीर तक का हिसाब रखेगी। इस कड़ी में तकरीबन सभी बड़े राष्ट्रीय मुद्दों पर भाजपा स्पष्ट तरीके से अपनी बात कहेगी। विपक्ष जिन राष्ट्रीय मुद्दों को उछाल कर योगी और भाजपा का भ्रम तोड़ने का दावा कर रहे हैं, पार्टी ने इसका तोड़ निकाल लिया है। विपक्षी दलों को मुद्दों की याद आ रही है। उत्तरप्रदेश का चुनाव उतना साधारण भी नहीं है। अगर सत्ताधारी पार्टी को पसीना बहाना पड़ रहा है तो विपक्षी दलों के लिए ये मैदान कितना मुश्किल है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। विपक्ष जब लोगों के बीच पहुंचेगा तो कुछ सवाल भी

उत्तरप्रदेश का चुनाव उतना साधारण भी नहीं है। अगर सत्ताधारी पार्टी को पसीना बहाना पड़ रहा है तो विपक्षी दलों के लिए ये मैदान कितना मुश्किल है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

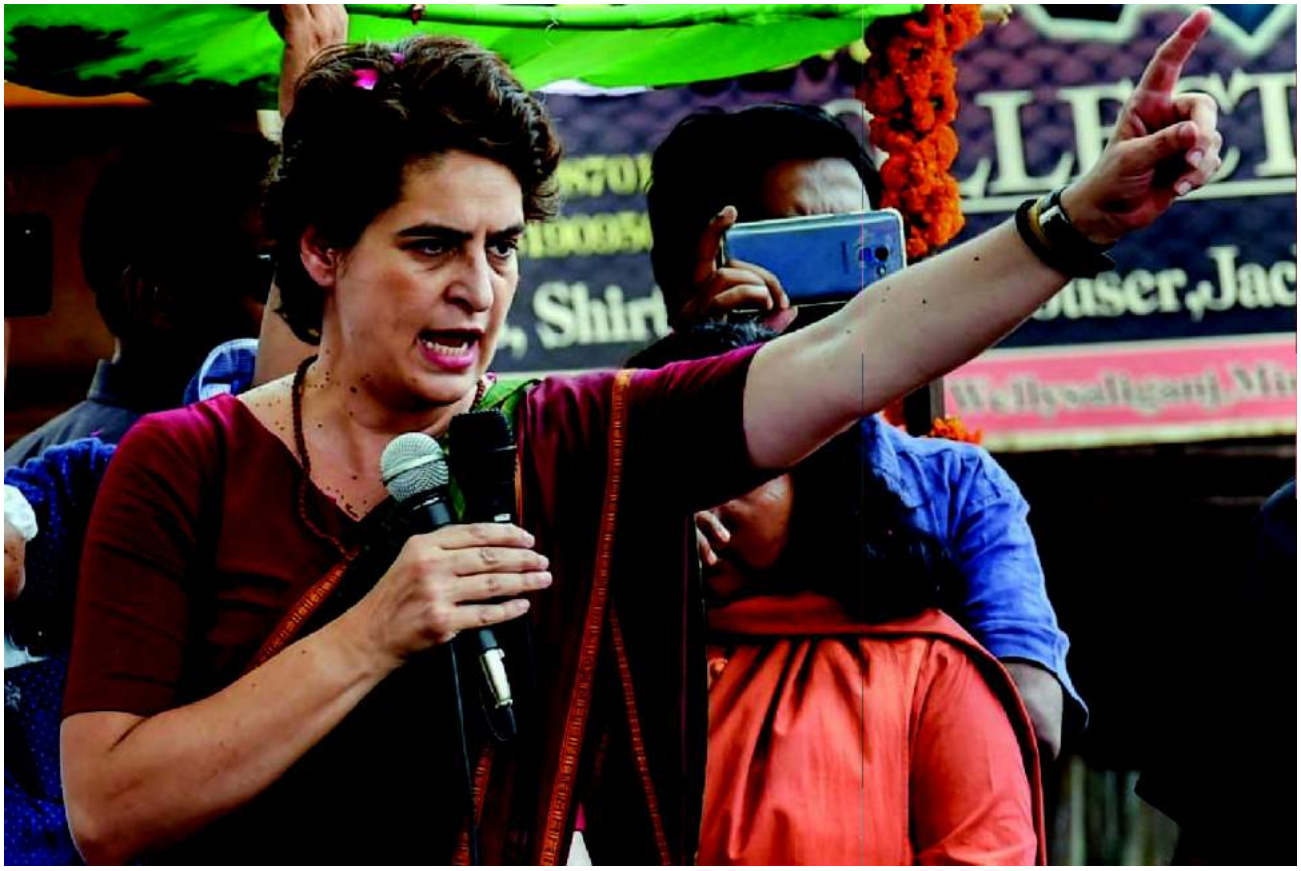

उठेंगे। भाजपा नेता, कोरोना संक्रमण, कश्मीर, किसान, राम मंदिर, महंगाई व बेरोजगारी जैसे मसलों पर मजबूती से अपना पक्ष रखेंगे। पार्टी ने इनमें से कई राष्ट्रीय मुद्दों को अपने पक्ष में करने की बात कही है। अब उसे यूपी चुनाव में जमकर भुनाया जाएगा।

भाजपा को उम्मीद है कि उत्तरप्रदेश या किसी भी दूसरे राज्य का वोटर अब कोरोना के उस दौर को भूल चुका है। यूं भी कह सकते हैं कि केंद्र सरकार ने लोगों को वैक्सीन के चक्कर में ऐसा उलझाया कि अब उन्हें कोरोना से भय नहीं लग रहा। प्रधानमंत्री मोदी और उनके सहयोगियों से लेकर भाजपा के निचले स्तर के कार्यकर्ताओं ने वैक्सीन को लेकर ऐसा प्रचार अभियान शुरू किया कि विपक्ष भी हैरान रह गया। लोगों का ध्यान अब कोरोना की बजाए इस ओर ज्यादा जाने लगा कि देश में वैक्सीन का आंकड़ा कहां तक पहुंच गया है। इसके बाद किसान आंदोलन की बात होती है। विपक्ष ने इस मुद्दे को भी जमकर भुनाया है, लेकिन भाजपा ने अपनी रणनीति से इस मसले को ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया कि जहां चुनाव में इसका संभावित असर खत्म हो गया है। लंबे समय तक सड़क मार्ग बंद रहने और आंदोलन स्थल पर कई तरह की अप्रिय घटनाओं से यह मुद्दा भी आम लोगों की याददाश्त से बाहर हो चला है। किसान आंदोलन को शुरू हुए एक साल हो गया, मगर सरकार ने किसानों की एक मांग को मानकर किसानों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। तीन कृषि कानूनों के अलावा किसान आंदोलन का मूल एमएसपी रहा है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश, जिसे गन्ना बेल्ट कहते हैं, वहां

भाजपा को उम्मीद है कि उत्तरप्रदेश या किसी भी दूसरे राज्य का वोटर अब कोरोना के उस दौर को भूल चुका है। यूं भी कह सकते हैं कि केंद्र सरकार ने लोगों को वैक्सीन के चक्कर में ऐसा उलझाया कि अब उन्हें कोरोना से भय नहीं लग रहा। प्रधानमंत्री मोदी और उनके सहयोगियों से लेकर भाजपा के निचले स्तर के कार्यकर्ताओं ने वैक्सीन को लेकर ऐसा प्रचार अभियान शुरू किया कि विपक्ष भी हैरान रह गया।

किसानों को गन्ने का सही दाम नहीं मिल रहा। वहां एसएसपी का मुद्दा बड़ा नहीं है। गन्ना उगाने वाले किसानों के पास भूमि ज्यादा है। इनमें अधिकांश किसान जाट हैं। इनकी नाराजगी देखने को मिल सकती है। बाकी जातियां, जिनके पास खेती की जमीन बहुत कम है, उन्हें सरकार से उतनी शिकायत नहीं है। यहां पर भी वोटों के बंटवारे का खेल हो सकता है। ऐसी स्थिति में भाजपा को फायदा पहुंचने की बात कही जा रही है। सपा व रालोद का गठबंधन, योगी के लिए मुश्किल

चुनाव की दहलीज पर केंद्र सरकार ने पेट्रोल व डीजल की कीमतें कम कर दी हैं। इसका असर चुनाव में दिखेगा। जब तेल के दाम आसमान छू रहे थे, तब विपक्षी दल उसे सरकार के खिलाफ एक बड़े हथियार के तौर पर इस्तेमाल नहीं कर पाए। महंगाई और बेरोजगारी का मुद्दा विपक्ष के पास था, मगर उसे उड़ा नहीं सके।

कोर्ट का रहा हो, लेकिन पब्लिक आगे पीछे की सारी कहानी से वाकिफ है। भाजपा ने इस मुद्दे को इस तरह से जनता के बीच रखा कि विपक्षी नेताओं को भी मंदिर में पहुंचना पड़ा। उन्हें भी किसी न किसी तरह अयोध्या का जिक्र अपने भाषण में करना पड़ गया। विपक्षी नेताओं ने मंदिर में पहुंचकर श्रीराम के दर्शन किए। भाजपा, इसे अपने पक्ष में मान रही है। चुनाव की दहलीज पर केंद्र सरकार ने पेट्रोल व डीजल की कीमतें कम कर दी हैं। इसका असर चुनाव में दिखेगा।

पैदा कर सकता है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर के किसान आंदोलन का असर वोटरों पर पड़ेगा, इसमें संशय है। साल 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा को जाटों के 70 फीसदी से अधिक वोट मिले थे। इसके बाद 2019 के चुनाव में भी जाटों ने दिल खोलकर भाजपा का साथ दिया था। हालांकि अब भाजपा मंत्रियों को काले झंडे दिखाए गए हैं।

पब्लिक आगे-पीछे की सारी कहानी से वाकिफ है

अनुच्छेद 370 के बाद का कश्मीर मुद्दा भाजपा खूब भुनाएगी। दशकों बाद कश्मीर में जन्माष्टमी की झांकियां निकली हैं। श्रीनगर के गणपतयार मंदिर में गणेश चतुर्थी की पूजा अर्चना संभव हो सकी। डल झील में एयर शो आयोजित हुआ। राम मंदिर, इस मुद्दे को यूपी ही नहीं, बल्कि दूसरे राज्यों के लोगों के जेहन में भी ऐसा बैठाया है कि वे इसकी चर्चा कर रहे हैं। भले ही मंदिर बनाने का फैसला सुप्रीम

जब तेल के दाम आसमान छू रहे थे, तब विपक्षी दल उसे सरकार के खिलाफ एक बड़े हथियार के तौर पर इस्तेमाल नहीं कर पाए। महंगाई और बेरोजगारी का मुद्दा विपक्ष के पास था, मगर उसे उड़ा नहीं सके।

यूपी चुनाव में अब्बाजान और जिन्ना

हिंदू-मुस्लिम का मुद्दा जिसे भाजपा ने हिंदुत्व की आड़ लेकर आगे बढ़ाना शुरू किया है। यूपी चुनाव में उसे अपने फायदे के तौर पर देख रही है। बसपा सुप्रीमो मायावती

ने कहा है कि भाजपा और सपा, ये दोनों पार्टियां चुनाव को हिंदू-मुसलमान बनाने के लिए जिन्ना के साथ अयोध्या गोलीबारी का मुद्दा उठा रही हैं। हाल ही में कांग्रेस पार्टी के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी ने हिंदू-मुसलमानों को लेकर एक ट्वीट साझा किया था। उन्होंने इस ट्वीट में किसी एक पार्टी पर निशाना नहीं साधा। ट्वीट में लिखा था, तुम हिंदू, सिख, ईसाई न मुसलमान के हो, बस मित्रों के हो, न देश

न इंसान के हो। यूपी में अब्बाजान और जिन्ना को लेकर बयानबाजी शुरू हो गई है। मुख्यमंत्री योगी कह चुके हैं कि अब्बाजान शब्द के इस्तेमाल पर समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष अखिलेश यादव को एतराज क्यों है। इन बयानों से साफ है कि उत्तरप्रदेश के चुनाव में हिंदू मुस्लिम को लेकर सभी दल अपनी अलग रणनीति बना रहे हैं। विपक्ष को मालूम है कि भाजपा के इस किले को फतेह करना आसान नहीं है।

पहले राजीव गांधी ने पंचायती राज में महिलाओं का आरक्षण दिया, फिर उसके बाद सोनिया गांधी ने महिला आरक्षण विधेयक रायसभा में पारित किया और अब प्रियंका गांधी ने यह फैसला किया है जो ऐतिहासिक है। जब तक हम राजनीति में महिलाओं को भागीदारी नहीं देंगे तब तक उनका सशक्तिकरण नहीं हो सकता है। पंचायती राज इसका उदाहरण हैं जहां महिलाओं को मौके मिले तो उन्होंने विकास की नई इबारत लिख दी है। पहली बार चुनाव लड़ने वाली महिलाएं राजनीतिक तौर पर उतनी परिपक्व नहीं हों लेकिन जब तक एक बार चुनाव लड़ लेती हैं, तो उनमें वह परिवपक्वता आ ही जाती है। पार्टी के इस फैसले से महिलाओं का मनोबल बढ़ा है।

उत्तरप्रदेश के चुनाव में हिंदू मुस्लिम को लेकर सभी दल अपनी अलग रणनीति बना रहे हैं। विपक्ष को मालूम है कि भाजपा के इस किले को फतेह करना आसान नहीं है।

पूरा राजनीतिक परिदृश्य बदल दिया

यूपी में धर्म और जातियों का राजनीति में प्रभाव बना हुआ है, लेकिन प्रियंका ने पूरे राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया है। यूपी के चुनाव में यह सवाल महत्वपूर्ण हो गया है कि क्या आपकी पार्टी 40 फीसदी महिलाओं को टिकट दे रही है। कांग्रेस के लिए 40 फीसदी महिलाओं को टिकट देना आसान है, क्योंकि अभी

उसकी सात सीटों को छोड़कर सारी खाली है, लेकिन भाजपा के लिए यह मुश्किल है कि 325 सीटों पर अपने मौजूदा विधायकों में से कितने के टिकट काटकर महिलाओं को देगी।

बीजेपी को मिलेगा बहुमत लेकिन घटेंगी सीटें

विधानसभा चुनाव 2022 के लिए बुंदेलखंड में इस बार जोरदार घमासान होने के आसार हैं। बीजेपी के लिए इस बार का

विधानसभा चुनाव 2022 के लिए बुंदेलखंड में इस बार जोरदार घमासान होने के आसार हैं। बीजेपी के लिए इस बार का चुनाव किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं है। बीजेपी के लिए पिछला प्रदर्शन दोहराने का दबाव है।

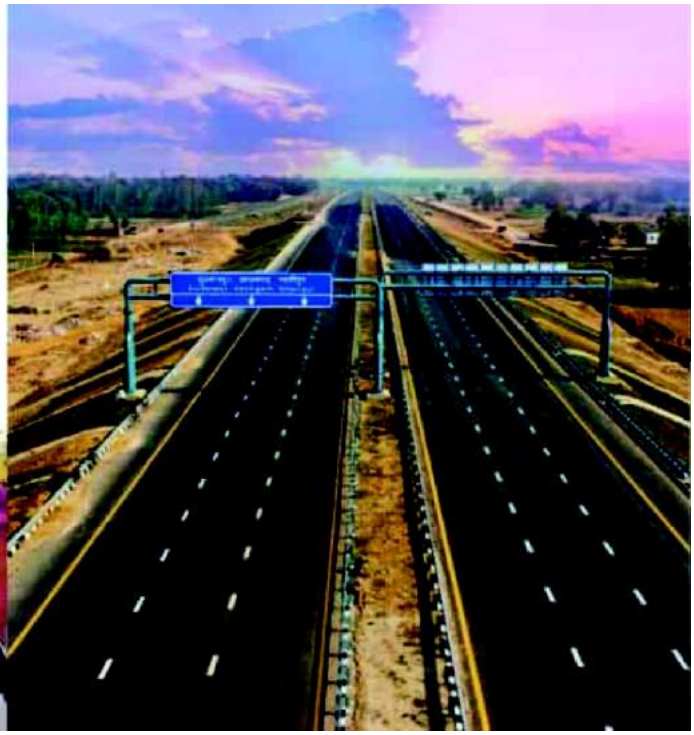

चुनाव किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं है। बीजेपी के लिए पिछला प्रदर्शन दोहराने का दबाव है। एक संस्थान ने उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव से पहले राज्य की जनता का मूड जानने का प्रयास किया है। ओपिनियन पोल से जानने की कोशिश हुई है कि अभी जनता का मूड कैसा है। इस सर्वे में 9000 लोगों से बात की गई। ये सर्वे 6 से 10 नवंबर के बीच हुआ। बुंदेलखंड क्षेत्र में बीजेपी को 42.8 प्रतिशत, सपा को 33.3 प्रतिशत को 12.1 प्रतिशत और कांग्रेस को 8.1 प्रतिशत वोट मिलने की संभावना है। वहीं सीटों को देखें तो बीजेपी तो 15-17, सपा को 0-1, बसपा को 2-5 और कांग्रेस 1-2 सीटें मिल सकती हैं। उत्तर प्रदेश में एक बार फिर भारतीय जनता पार्टी की वापसी हो रही है। हालांकि उसे 2017 से कम सीटें मिलती दिख रही हैं। बुंदेलखंड में यूपी के सात जिले झांसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, बांदा, महोबा और चित्रकूट आते हैं। इन 7 जिलों में 19 विधानसभा सीटें महोबा, हमीरपुर, ललितपुर और चित्रकूट में 2-2 , जालौन में 3 और झांसी और बांदा जिलों में 4-4 विधानसभा सीटें आती हैं।

प्रतिशत को 12.1त्न और कांग्रेस को 8.1 प्रतिशत वोट मिलने की संभावना है। वहीं सीटों को देखें तो बीजेपी तो 15-17, सपा को 0-1, बसपा को 2-5 और कांग्रेस 1-2 सीटें मिल सकती हैं। उत्तर प्रदेश में एक बार फिर भारतीय जनता पार्टी की वापसी हो

रही है। हालांकि उसे 2017 से कम सीटें मिलती दिख रही हैं। बुंदेलखंड में यूपी के सात जिले झांसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, बांदा, महोबा और चित्रकूट आते हैं। इन 7 जिलों में 19 विधानसभा सीटें महोबा, हमीरपुर, ललितपुर और चित्रकूट में 2-2 , जालौन में 3 और झांसी और बांदा जिलों में 4-4 विधानसभा सीटें आती हैं।

2017 में जीती थीं सभी 19 सीटें- 2017 के विधानसभा चुनाव में बीजेपी ने बुंदेलखंड क्लीन स्पीप किया। मतलब सभी 19 सीटों पर बीजेपी के प्रत्याशी ही जीते थे। इस बार विधानसभा चुनाव में ओपिनियन पोल में बीजेपी को 15-17 सीटें मिलना बताया गया है। इसके हिसाब से बीजेपी को यहां 2 से 4 सीटों का नुकसान होता दिख रहा है।

बुंदेलखंड विधानसभा चुनावों में 1991 में बीजेपी को यहां से सबसे ज्यादा सीटें मिली थीं। तब बीजेपी 11 सीटों पर जीती थी। उसके बाद से बीजेपी यहां पर दहाई के अंक

बीजेपी के लिए इस बार का चुनाव किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं है। बीजेपी के लिए पिछला प्रदर्शन दोहराने का दबाव है। बीजेपी बुंदेलखंड एक्सप्रेसवे के बहाने यहां पर वोटबैंक जुटाने की कोशिश कर रही है।

तक को नहीं छू पाई थी। 2017 के विधानसभा चुनाव में पार्टी को बड़ी सफलता मिली और सभी 19 सीटें जीतीं। इस बार भी यहां बीजेपी का जलवा बरकरार रहेगा।

बीजेपी पर प्रदर्शन दोहराने का दबाव

विधानसभा चुनाव 2022 के लिए बुंदेलखंड में इस बार जोरदार घमासान होने के आसार हैं। बीजेपी के लिए इस बार का चुनाव किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं है। बीजेपी के लिए पिछला प्रदर्शन दोहराने का दबाव है। बीजेपी बुंदेलखंड एक्सप्रेसवे के बहाने यहां पर वोटबैंक जुटाने की कोशिश कर रही है। पीएम मोदी ने फरवरी में बुंदेलखंड एक्सप्रेसवे का शिलान्यास किया था। बुंदेलखंड एक्सप्रेस-वे चित्रकूट जिले के भरतकूप क्षेत्र से शुरू होकर बांदा, महोबा, हमीरपुर, जालौन, औरैया होकर इटावा में कुदरैल गांव के पास आगरा-लखनऊ एक्सप्रेस-वे से जुड़ेगा।

बुंदेलखंड पर योजनाओं की झड़ी- प्रधानमंत्री मोदी चित्रकूट जिले के बीहड़ इलाके के 239 ग्राम पंचायतों के 470 राजस्व गांवों में 1515.51 करोड़ रुपये की लागत से पेयजल की पांच पाइप लाइन परियोजनाओं का भी शिलान्यास कर चुके हैं। इसके अलावा डिफेस कॉरिडोर को के जरिए भी बीजेपी बुंदेलखंड के विकास के दावे कर रही है।

ममता बैनर्जी की लोकसभा चुनाव 2024 पर नजर

अमित राय/मणिशंकर पांडे

जैसे-जैसे उत्तर-पूर्व के कई नेता टीएमसी में शामिल होते जा रहे हैं, बंगाल से बाहर और राष्ट्रीय राजनीति में शामिल होने के तृणमूल कांग्रेस की महत्वाकांक्षा को और बल मिल रहा है। विश्लेषक कहते हैं कि यदि ममता को 2024 के चुनाव में पीएम नरेंद्र मोदी के खिलाफ मुख्य विपक्षी चेहरा बनना है तो टीएमसी को दूसरे राज्यों में पैर पसारना ही होगा। पश्चिम बंगाल में भारतीय जनता पार्टी को सत्ता के करीब पहुंचने से रोकने में कामयाब रही तृणमूल कांग्रेस उत्साह में डूबी हुई है। 2024 के लोकसभा चुनाव पर नजर गड़ाए पार्टी पश्चिम बंगाल से बाहर अपना दायरा बढ़ाने की कोशिश कर रही है। पार्टी की रणनीति लोकसभा चुनाव से पहले त्रिपुरा और गोवा जैसे राज्यों में होने वाले विधानसभा चुनाव में अपनी पार्टी की मौजदूगी दर्ज कराने की है। त्रिपुरा में तो पार्टी की सक्रियता बहुत बढ़ गई है।

टीएमसी ऐसी कोशिश पहली बार नहीं कर रही है। पिछले दो आम चुनावों से पहले भी ममता बनर्जी ने विपक्षी वोटों के बंटवारे से बचने के लिए अन्य दलों को केवल एक गैर-भाजपा उम्मीदवार को मैदान में उतारने के लिए मनाने की कोशिश की

थी, लेकिन उनमें इसमें सफलता नहीं मिली थी। टीएमसी ने कई उत्तर-पूर्वी राज्यों में अपने उम्मीदवार उतारे थे और और यहां तक कि दिल्ली में भी विधानसभा चुनाव लड़ी थी। हालांकि टीएमसी एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में पंजीकृत है, लेकिन अन्य राज्यों में इसकी उपस्थिति, यहां तक कि पार्टी कार्यालय और समर्थकों जैसे बुनियादी ढांचे के मामले में उसकी उपस्थिति नहीं दिखाई देती है।

क्या ममता बनर्जी को विपक्ष 2024 लोकसभा चुनाव में अपना नेता मानेगा

भवानीपुर उपचुनाव में ममता बनर्जी की जीत को लेकर किसी को भी कोई शंका नहीं थी, प्रश्न केवल वोटों के अंतर को लेकर था। भवानीपुर उपचुनाव में ममता बनर्जी ने 58,835 मतों से जीत हासिल की। गौरतलब है कि 2021 के विधानसभा चुनाव में बीजेपी को जबरदस्त पटखनी देने के बाद, मुख्यमंत्री ममता बनर्जी खुद नंदीग्राम से हार गयी थीं। चुनाव हारने के बाद तृणमूल पार्टी ने ममता बनर्जी को ही मुख्यमंत्री नियुक्त किया और इसलिए मुख्यमंत्री पद पर रहने के लिए ममता बनर्जी को 6 महीने के अंदर विधानसभा में पुनर्निर्वाचित होकर आना आवश्यक हो गया था। राज्य के मुख्यमंत्री का उपचुनाव में

तृणमूल का दावा है आने वाले 2024 के लोकसभा चुनाव में ममता बनर्जी बीजेपी विरोधी दलों का एकमात्र विश्वसनीय चेहरा हो सकती हैं।

जीतना और उपचुनाव में शासक दल के प्रार्थी का जीतना एक स्वाभाविक राजनीतिक प्रतिक्रिया मात्र है। जीत से उत्साहित तृणमूल कार्यकर्ता ममता बनर्जी को देश के प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहते हैं। तृणमूल कार्यकर्ताओं में यह आत्मविश्वास जागना स्वाभाविक है। इस जीत से उत्साहित तृणमूल ने स्पष्ट कहा है कि न तो कांग्रेस और न ही राहुल गांधी नरेंद्र मोदी का विकल्प हैं। तृणमूल का दावा है आने वाले 2024 के लोकसभा चुनाव में ममता बनर्जी बीजेपी विरोधी दलों का एकमात्र विश्वसनीय चेहरा हो सकती हैं। उपचुनाव जीतने के बाद अपनी सर्व-भारतीय छवि को सिद्ध करने के लिए ममता बनर्जी ने कहा कि भवानीपुर में 47 फीसदी गैर-बंगाली मतदाता हैं। मुझे सभी के वोट मिले। यहां गुजराती, मारवाड़ी, बिहारी और उड़िया भाषी लोग रहते है।

ममता का लक्ष्य बीजेपी मुक्त भारत

किसी भी राजनीतिक दल का अंतिम लक्ष्य केंद्रीय सत्ता पर पूर्ण नियंत्रण होता है। इसके लिए क्षेत्रीय दल को सर्वप्रथम राष्ट्रीय दल के रूप में पहचान बनाने की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जुड़े होने के कारण कांग्रेस पार्टी की

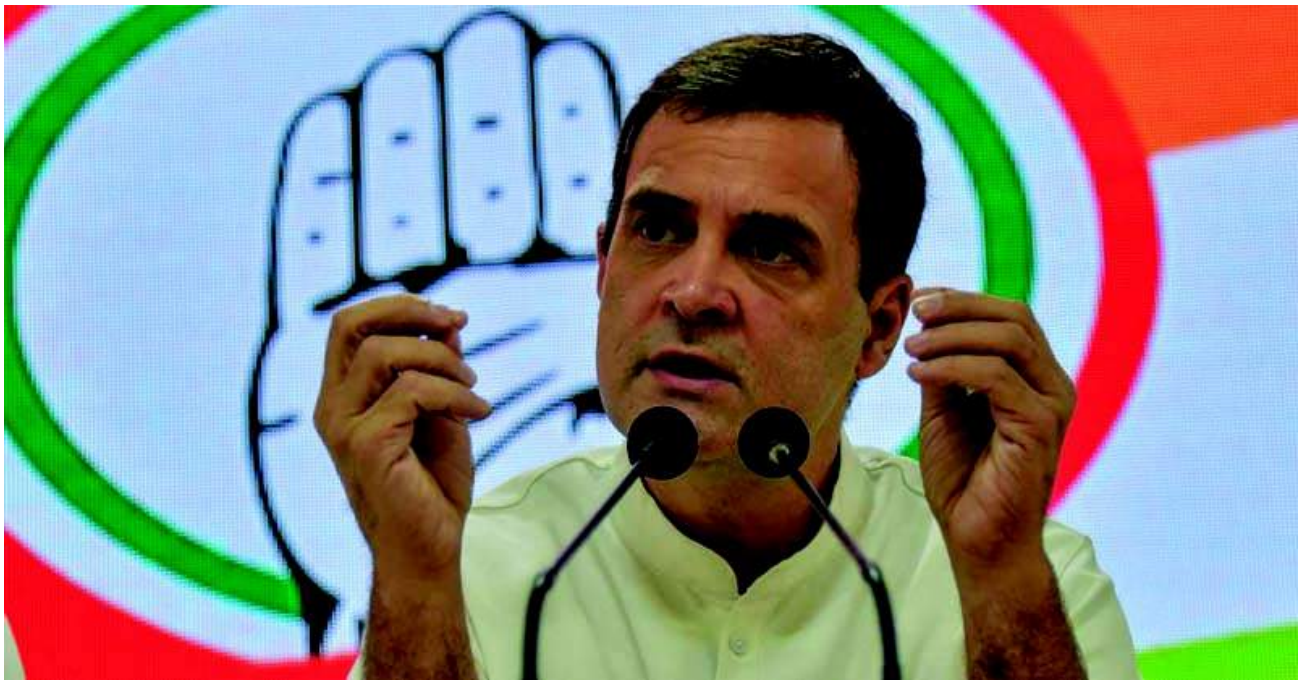

अपनी राष्ट्रीय पहचान और अस्तित्व है। धरोहर के तौर पर वर्तमान कांग्रेस पार्टी को इसका लाभ अवश्य मिल रहा है। भारतीय जनता पार्टी को अपना मुद्दा बनाकर अपनी राजनीतिक यात्रा शुरू की थी, आज देश की जनता ने हिंदूवाद के मुद्दे को राष्ट्रीय स्वीकृति दे दी है, परिणामस्वरूप बीजेपी की सरकार आज केन्द्र में है। वर्तमान में तृणमूल कांग्रेस के पास अभी ऐसा कोई मुद्दा नहीं है जिससे देश की हर जनता प्रभावित और सहमत हो। तृणमूल कांग्रेस का बीजेपी मुक्त भारत नारा आम जनता से यादा विपक्ष राजनीतिक दलों को लुभाने के लिए प्रतीत हो रहा है। कांग्रेस पार्टी की सहयोग के बिना राष्ट्रीय मुद्दा उठाना तृणमूल के लिए असंभव है। तृणमूल द्वारा कांग्रेस का विरोध ममता बनर्जी का बीजेपी के विरोध में की जा रही महागठबंधन के प्रयास में सबसे बड़ी बाधा है। बीजेपी का विरोध और राष्ट्रव्यापी अभियान चलाने की क्षमता और विश्वसनीयता है तो वह केवल कांग्रेस पार्टी में ही है। ममता तृणमूल कांग्रेस को राष्ट्रीय दल के रूप में देखना चाहती हैं। ममता को ये अच्छी तरह पता है कि दक्षिण भारत की राजनीति में तृणमूल दल को कभी भी राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में स्वीकार्य नहीं किया जाएगा। ममता के नेतृत्व में तृणमूल कांग्रेस उत्तर भारत में अपनी सीट बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। क्या आम आदमी पार्टी सुप्रीमो अरविंद केजरीवाल दिल्ली में तृणमूल के साथ सीट बंटवारा

तृणमूल कांग्रेस का बीजेपी मुक्त भारत नारा आम जनता से यादा विपक्ष राजनीतिक दलों को लुभाने के लिए प्रतीत हो रहा है। कांग्रेस पार्टी की सहयोग के बिना राष्ट्रीय मुद्दा उठाना तृणमूल के लिए असंभव है।

करना पसंद करेंगे? राजनीतिक दृष्टि से यह असंभव प्रतीत होता है। लेकिन पंजाब में यदि आम आदमी पार्टी तृणमूल कांग्रेस के साथ मिलकर कुछ सीटों पर समझौता करे तो आश्चर्य नहीं होगा। अभी ममता बनर्जी तृणमूल कांग्रेस को मजबूत करने के लिए उत्तर पूर्व भारत के कुछ राज्यों के साथ-साथ गोवा में भी अपने पैर जमाने का अथक प्रयास कर रही हैं।

विपक्ष का चेहरा बनना है तो दूसरे रायों में जाना ही होगा

2024 के आम चुनाव में पीएम नरेंद्र मोदी के खिलाफ प्रमुख विपक्षी चेहरा बनने के लिए ममता को अपनी पार्टी को दूसरे राज्यों में ले ही जाना होगा और वहां सरकार भी बनाने की सख्त जरूरत है। वह त्रिपुरा से शुरुआत करना चाहती हैं क्योंकि त्रिपुरा उनका सबसे नजदीकी राज्य हैं। वहीं टीएमसी ने उन छोटे-छोटे राज्यों पर फोकस किया है जहां क्षेत्रीय दल नहीं है। पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने 2024 के लोकसभा चुनाव के संदर्भ में हाल ही में कहा था कि पश्चिम बंगाल में खेला हुआ है और अब यह खेला त्रिपुरा और असम के साथ 2024 में दिल्ली में होगा।

बंगाल की गद्दी किसे सौंपेंगी ममता बनर्जी?

दिल्ली दौरा राष्ट्रीय राजनीति की महत्वाकांक्षा रखने वाले क्षेत्रीय नेताओं के

शरद पवार

मायावती

अखिलेश यादव

अरविंद केजरीवाल

लिए नई बात नहीं है। ऐसे दौरों के लिए सार्वजनिक तौर पर बहाना चाहे जो रहे, ममता बनर्जी से पहले भी कई क्षेत्रीय छत्रप यह काम करते रहे हैं, कभी विपक्षी दलों की एकता के नाम पर, कभी केंद्र सरकार की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ भारत को एक करने के नाम पर तो कभी देश में बढ़ती फासिस्ट ताकतों के नाम पर। इस किरदार में कभी चंद्रबाबू नायडू नज़र आए, कभी के चंद्रशेखर राव तो कभी शरद पवार। वर्तमान में यह काम ममता बनर्जी ने अपने जिम्मे ले लिया है क्योंकि फिलहाल राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भूमिका को तलाशने वाले लोगों में सबसे आगे वही हैं। ऐसा नहीं कि राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भूमिका की खोज में ममता बनर्जी पहली बार उतरी हैं। इससे पहले 2014 लोकसभा चुनाव के समय भी उन्होंने यह प्रयास किया था। तब उनके साथ अन्ना हजारे थे। हजारे को अपनी लोकप्रियता पर भरोसा था और इसीलिए उन्होंने ममता बनर्जी को राष्ट्रीय स्तर पर लॉन्च करने की जिम्मेदारी उठाई थी। यह बात अलग है कि तब उनका प्रयास नाकाम रहा था। अब ममता बनर्जी दोबारा अपनी भूमिका खोजने निकली हैं। किसी भी राजनीतिक नेतृत्व के लिए यह स्वाभाविक है कि जब तक वो राजनीति में सक्रिय है, अपने लिए वृहद भूमिका की तलाश करता रहे। ऐसे में ममता बनर्जी का यह प्रयास राजनीति के लिहाज से सही भी है और तार्किक भी। जो बात यहाँ देखने वाली है, वह ये है कि विपक्षी दलों की सोच में एकजुटता को लेकर तारतम्य कितना है?

जब प्रशांत किशोर ने शरद पवार से मुलाकात की थी, तब पवार एक नॉन बीजेपी नॉन कॉन्ग्रेस फ्रंट बनाने के पक्ष में थे। उसके बाद प्रशांत किशोर राहुल गाँधी से मिले। तब लग रहा था कि राहुल गाँधी के साथ उनकी मुलाकात पंजाब की राजनीति से सम्बंधित थी पर अब ममता बनर्जी के दिल्ली दौरे और उसमें होने वाली बैठकों के बाद लग रहा है कि फिलहाल पवार के नॉन कॉन्ग्रेस नॉन बीजेपी फ्रंट के प्रस्ताव को खारिज कर दिया गया है और विपक्षी दल अब केवल भारतीय जनता पार्टी के विरुद्ध एकजुट होने के प्रस्ताव पर सहमत हो गए हैं।

विपक्षी एकता में गाँधी-वाम के प्रश्न

प्रश्न यह है कि एकजुटता के इस प्रस्ताव में कौन से दल शामिल हैं और कौन-कौन से एकजुट होंगे? वामदलों की भूमिका क्या होगी, खासकर तब जब वे दो राज्यों में से एक पश्चिम बंगाल में अपने बचे-खुचे वोट तृणमूल कॉन्ग्रेस को देकर अपना राजनीतिक भविष्य ही नहीं बल्कि अस्तित्व दाँव पर लगा चुके हैं। वामदलों की भूमिका के बाद यह प्रश्न महत्वपूर्ण रहेगा कि कॉन्ग्रेस की ओर से गाँधी परिवार इस प्रस्ताव पर अपनी भूमिका कहाँ देख रहा है? राष्ट्रीय राजनीति में शीर्ष की खोज में वर्षो तक मेहनत से लगे रहने वाले राहुल गाँधी इस एकजुटता में खुद को कहाँ पाते हैं? क्या राहुल खुद से प्रश्न नहीं करेंगे कि पश्चिम बंगाल में अपनी पार्टी के वोट ममता बनर्जी को क्या इसलिए दिलवाए थे कि वे राज्य की राजनीति छोड़कर दिल्ली का रुख कर लें? शरद पवार की क्या भूमिका रहेगी? क्या ममता बनर्जी खुद को केवल पश्चिम बंगाल तक सीमित रखते हुए राष्ट्रीय राजनीति के शीर्ष पर पहुँच पाएँगी? और यदि वे अन्य राज्यों में अपने दल के लिए जमीन तलाशेंगी, तो इस पर और विपक्षी दलों की प्रतिक्रिया क्या होगी?- यह प्रश्न भी उठेगा कि एकजुटता की यह तैयारी अगले लोकसभा चुनावों के लिए हो रही है या फिर उससे पहले होने वाले विधानसभा चुनावों के लिए? ये ऐसे प्रश्न हैं, जो केवल एक बार नहीं बल्कि बार-बार उठेंगे और इन पर किसी तरह की अस्पष्टता विपक्षी एकजुटता के आड़े आएगी।

देश को ऊर्जा साक्षरता का पाठ पढ़ायेगा मध्यप्रदेश

सुनीता दुबे

देश और दुनिया को ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु असंतुलन और बिजली के अपव्यय से बचाने के लिये ऊर्जा साक्षरता अभियान (ऊषा) के रूप में लोगों को जागरूक करने की अनूठी पहल मध्यप्रदेश के नवीन एवं नवकरणीय ऊर्जा विभाग ने की है। अभियान में प्रदेश के साढ़े 7 करोड़ नागरिकों को समयबद्ध कार्य-योजना बनाकर ऊर्जा साक्षर बनाने के प्रयास किये जायेंगे। पहले 6 महीनों में 50 लाख नागरिकों को ऊर्जा साक्षर बनाने का लक्ष्य है।

अभियान का उद्देश्य लोगों को ऊर्जा प्रयोग के प्रति संवेदनशील बनाते हुए आगामी वर्षो में पृथ्वी को ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु संतुलन के दुष्प्रभावों से बचाना है। इसके अंतर्गत ऊर्जा के व्यय एवं अपव्यय की समझ विकसित करना, ऊर्जा के पारम्परिक एवं वैकल्पिक साधनों की जानकारी देना, उनका पर्यावरण पर प्रभाव, ऊर्जा एवं ऊर्जा के उपयोग के बारे में सार्थक संवाद, ऊर्जा संरक्षण एवं प्रबंधन के बारे में जागरूकता, ऊर्जा उपयोग के प्रभावों, परिणामों की समझ के आधार पर इसके दक्ष उपयोग के लिये निर्णय लेने की दक्षता उत्पन्न करना, पर्यावरणीय जोखिम एवं जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव को कम करना और विभिन्न ऊर्जा तकनीकों के चयन के लिये लोगों को सक्षम बनाया जायेगा।

स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों सहित जन-साधारण को ऊर्जा की महत्ता,

पारम्परिक ऊर्जा से होने वाला कार्बन उत्सर्जन, सौर, पवन, बॉयोमॉस आदि हरित ऊर्जा के लाभ और मितव्ययता आदि की विस्तृत जानकारी दी जायेगी। अभियान के जरिये लोगों को बताया जायेगा कि एक यूनिट बिजली बचाने से लगभग 2 यूनिट बिजली का उत्पादन बढ़ता है।

नई पीढ़ी द्वारा ऊर्जा निर्माण और सदुपयोग में जागरूकता के दूरगामी परिणाम होंगे। ऊर्जा उपयोग के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ की जानकारी सुलभ रूप में पहुँचाने और अपनाने का कार्य मिशन के रूप में किया जायेगा। श्रेणीगत प्रशिक्षण के माध्यम से चरण-बद्ध सर्टिफिकेशन का भी प्रावधान किया गया है।

प्रदेश के सभी नागरिकों को समय-बद्ध कार्य-योजना के अनुसार ऊर्जा साक्षर बनाया जायेगा। पोस्टर, होर्डिंग, एनीमेशन, वीडियो, सोशल मीडिया, जिंगल्स, मोबाइल एप, स्वयं करके देखो आदि विधाओं द्वारा रोचक तरीके से लोगों को क्लीन ऊर्जा के संवर्धन और संरक्षण के लिये प्रेरित किया जायेगा।

मोबाइल से होगा पंजीयन

ऊर्जा साक्षरता अभियान से जुड़ना पूरी तरह निःशुल्क है। वेब पोर्टल या मोबाइल एप से एप डाउनलोड कर मोबाइल ओटीपी के माध्यम से पंजीयन होगा। इसके बाद लोग अपनी इच्छानुसार निर्धारित पाठ्यक्रमों में से एक का चयन कर सकेंगे। पाठ्यक्रम के चयन पर प्रतिभागियों को पाठ्यक्रम (मॉड्यूल) डाउनलोड करने की सुविधा मिलेगी। प्रतिभागी अपनी

सुविधानुसार ऑनलाइन पद्धति से बहु-विकल्पीय प्रश्नों के रूप में एक परीक्षा में भाग ले सकेगा। प्रश्न कम्प्यूटर द्वारा रेंडम आधार पर होंगे। प्रतिभागी के उत्तरों के आधार पर ऑनलाइन ऊर्जा साक्षरता प्रमाण-पत्र जारी किया जायेगा। प्रमाण-पत्र ओटीपी वेरीफिकेशन से डाउनलोड किया जा सकेगा। प्रतिभागियों को श्रेणी सुधार एवं अन्य उच्च स्तर पर परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा भी होगी।

मिलेगी प्रत्यक्ष जानकारी

जन-साधारण को अक्षय ऊर्जा उपयोग की ओर प्रेरित करने के लिये अक्षय ऊर्जा आधारित संयंत्रों की स्थापना का प्रदर्शन भी किया जायेगा। चुने हुए शासकीय कार्यालयों, आँगनवाड़ी भवनों, चिन्हित चिकित्सा केन्द्रों आदि को सौर ऊर्जीकृत किया जायेगा। बड़े शासकीय भवनों में शून्य निवेश आधारित रेस्को मॉडल पर रूफटॉप संयंत्रों की स्थापना की जा रही है। तकनीकी शिक्षा विभाग के 12 तकनीकी संस्थानों को ऑफग्रिड किया जाकर पूर्ण रूप से सौर ऊर्जीकृत किया जा रहा है। प्रदर्शन स्थलों की सफलता की कहानियों को विभिन्न माध्यमों से लोगों के बीच पहुँचाया जा रहा है।

विकास की अंधाधुंध दौड़ के परिणाम स्वरूप उपजी ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु असंतुलन को नियंत्रित करने में ऊर्जा साक्षरता अभियान एक महत्वपूर्ण टर्निंग प्वाइंट सिद्ध होगा। कहते हैं बूंद-बूंद से घट भरता है। उम्मीद की जा रही है कि मध्यप्रदेश में हुई इस महत्वपूर्ण पहल का देश के अन्य राज्यों पर भी असर पड़ेगा। मध्यप्रदेश का यह नवाचार जब देश-दुनिया में फैलेगा, तो निश्चित ही अनियंत्रित होते हुए पर्यावरण में सुधार होगा, जो हमारे द्वारा आने वाली पीढ़ियों के लिये एक अनमोल सौगात होगी।

आनंद और आस्था की अभिव्यक्ति है, जनजातीय नृत्य-संगीत

मध्यप्रदेश का इन्द्रधनुषी जनजातीय संसार, जहाँ जीवन अपनी सहज निश्छलता के साथ आदिम मुस्कान बिखेरता हुआ पहाड़ी झरने की तरह गतिमान है। सघन वनों से आच्छादित एक ऐसा प्रदेश, जहाँ विन्ध्याचल, सतपुड़ा और अन्य पर्वत-श्रेणियों के उन्नत मस्तकों का गौरवगान करती हवाएँ और उनकी उपत्यकाओं में अपने कलकल निनाद से आनंदित करती नर्मदा, ताप्ती, तवा, पुनासा, बेतवा, चंबल, दूधी आदि नदियों की वेगवाही रजत-धवल धाराएँ मानो,वसुंधरा के हरे पृष्ठों पर अंकित पारंपरिक गीतों की मधुर पंक्तियाँ।

ढोल, माँदर, गुदुम, टिमकी, डहकी, माटी माँदर, थाली, घंटी, कुंडी, ठिसकी, चुटकुलों की ताल पर जब बाँसुरी, फेफरिया और शहनाई की स्वर-लहरियों के साथ भील, गोण्ड, कोल, कोरकू, बैगा, सहरिया, भारिया आदि जनजातीय युवक-युवतियों की तरह विन्ध्य-शिखर थिरक उठते हैं तो पचमढ़ी की कमर में करधौनी की भाँति लिपटकर सतपुड़ा झूमने लगता है और भेड़ाघाट में अपने धुआँधार हर्षराग से दिशाओं को आनंदित करता नर्मदा का जलप्रपात। जनजातियों का नृत्य-संगीत प्रकृति की इन्हीं लीला-मुद्राओं का तो अनुकरण है।

जनजाति समुदाय प्रायः प्रकृति सान्निध्य में रहते हैं। इसलिये निसर्ग की लय ताल और राग-विराग उनके शरीर में रक्त के साथ संचरित होते हैं। वृक्षों का झूमना और कीट-पतंगों का स्वाभाविक नर्तन जनजातियों को नृत्य के लिये प्रेरित करते हैं। हवा की सरसराहट, मेघों का गर्जन, बिजली की कौंध, वर्षा की साँगीतिक टिपटिप,पक्षियों की लयबद्ध उड़ान ये सब नृत्य-संगीत के उत्प्रेरक तत्व हैं।

नृत्य मन के उल्लास की अभिव्यक्ति का सहज और प्रभावी माध्यम है। संगीत सुख-दुख यानी राग-विराग को लय और ताल के साथ प्रकट करता है। कहा जा सकता है कि नृत्य और संगीत मनुष्य की सबसे कोमल अनुभूतियों की कलात्मक प्रस्तुति हैं। जनजातियों के देवार्चन के रूप में आस्था की परम अभिव्यक्ति के प्रतीक भी। नृत्य-संगीत जनजातीय जीवन-शैली का अभिन्न अंग है।यह दिन भर के श्रम की थकान को आनंद में संतरित करने का उनका एक नियमित विधान भी है।

जबलपुर, कटनी, मंडला, डिण्डौरी, पुष्पराजगढ़, उमरिया, शहडोल, सीधी, सिवनी, बालाघाट, छिन्दवाड़ा, बैतूल, रायसेन आदि ज़िलों में गोण्ड जनजाति समूह में करमा, सैला, भड़ौनी, बिरहा, कहरवा, ददरिया, सुआ आदि नृत्य-शैलियाँ प्रचलित हैं। गोण्ड समुदाय के सजनी गीत-नृत्य की भाव-मुद्राएँ चमत्कृत करती हैं। इनका दीवाली नृत्य भी अनूठा होता है। माँदर, टिमकी, गुदुम, नगाड़ा, ठिसकी, चुटकी, झांझ, मंजीरा, खड़ताल, सींगबाजा, बाँसुरी, अलगोझा, शहनाई, तमूरा, बाना, चिकारा, किंदरी आदि इनके प्रिय वाद्य हैं। बैगा माटी माँदर और नगाड़े के साथ करमा, झरपट और ढोल के साथ दशेहरा नृत्य करते हैं। विवाह के अवसर पर ये बिलमा

नृत्य कराते हैं। बारात के स्वागत में किया जाने वाला परघौनी नृत्य आकर्षक होता है। छेरता नृत्य नाटिका में मुखौटों का अनूठा प्रयोग होता है। इनकी नृत्यभूषा और आभूषण भी विशेष होते हैं।

भील जनजाति समूह के लोग नृत्य को सोलो या नास कहते हैं। लाहरी, पाली, गसोलो, आमोसामो, सलावणी, दौड़ावणी, घोड़ी, भगोरिया आदि इस जनजाति समूह की बहु प्रचलित नृत्य-शैलियाँ हैं। भील नृत्य के साथ प्रायः बड़ा ढोल, ताशा, थाली, घंटी, ढाक, फेफरिया, पावली (बाँसुरी) आदि वाद्यों का प्रयोग करते हैं। कोरकू जनजाति के नृत्य प्रायः मिथकों पर आधारित और पर्व-प्रसंगों से जुड़े होते हैं। चैत्र में देव दशेहरा, चाचरी और गोगोल्या, वैशाख में थापटी, ज्येष्ठ में ढाँढल और डोडबली, श्रावण में डंडा नाच, क्वांर में होरोरया और चिल्लुड़ी, कार्तिक की पड़वा पर ठाट्या तथा वैवाहिक अवसरों पर स्त्रियों का गादली नृत्य प्रचलित है।यह जनजाति नृत्य के साथ ढोल, ढोलक, मृदंग, टिमकी, डफ, अलगोझा, बाँसुरी, पवई, भूगडू, चिटकोरा, झांझ आदि वाद्य बजाते हैं। भारिया जनजाति के लोगों को भड़म, सैतम और करम सैला आदि नृत्य प्रिय हैं। ये नृत्य के साथ ढोल, ढोलक, टिमकी, झांझ और बाँसुरी बजाते हैं। युवतियाँ भी मंजीरा और चिटकुला बजाती हैं। सहरिया जनजाति में स्वांग अधिक लोकप्रिय है। इसमें पुरुष ही स्त्रीवेश धारण करते हैं। ये मस्त होकर फाग नृत्य का आनंद लेते हैं तेजाजी और रामदेवरा प्रसंगों पर आधारित नृत्य विशेष रूप से करते हैं। ये चंग और ताशा वाद्यों का प्रयोग अधिक करते हैं। कोल, कोंदर और अन्य जनजातीय लोग भी विभिन्न अवसरों पर नृत्य-संगीत को विशेष महत्व देते हैं।

जनसम्पर्क फीचर्स

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार और जनजातीय संस्कृति के अध्येता हैं।

06 देशों में पर्यावरण संरक्षण की अलख जगा रहे डॉ. धर्मेंद्र कुमार

विजया पाठक

विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से बढ़ रही मानवीय आवश्यकताओं ने पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया है। हर किसी में प्रगति के दौर में आगे निकलने की जल्दबाजी दिख रही है। ऐसे में ग्राम तेर्रा टोला हमीनपुर जिला अरवर, बिहार के निवासी डॉ. धर्मेंद्र कुमार ने पर्यावरण संरक्षण जैसे विषयों पर गंभीरता से जुड़ने के लिए लोगों को प्रेरित किया। ऐसे से चिकित्सक डॉ. धर्मेंद्र कुमार को होम्योपैथी की पढ़ाई के दौरान पर्यावरण विषय से जुड़ने का मौका मिला।

प्रारंभ में डॉ. धर्मेंद्र कुमार ने एक ऐसे संगठन का गठन करने का विचार किया, जो प्रकृति के संवर्द्धन के लिए कार्य करे। इन्होंने पीपल-नीम-तुलसी अभियान का गठन किया। डॉ. धर्मेंद्र कुमार पीपल-नीम-तुलसी के संचालक हैं। उन्होंने इस अभियान की शुरुआत मई 1991 में की थी। 31 वर्ष से वह इस अभियान को पल्लवित कर रहे हैं। पीपल-नीम-तुलसी अभियान की शुरुआत उन्होंने अपने पैतृक गांव हामीनपुर जिला अरवल से की थी। अरवल जिला नक्सली प्रभावित क्षेत्र से बदनाम है। डॉ. धर्मेंद्र कुमार ने प्रकृति अभियान चलाकर अरवल जिले को बदनामी से बचाए रखने का प्रयास किया। आज अभियान 31 वर्ष की यात्रा पूरी कर चुका है। हर हाथ से एक पीपल, नीम, तुलसी के पौधे लगाने हेतु आम आवाम में

जागृति लाने का प्रयास निरंतर जारी है। आगे भी जारी रहेगा। इस अभियान के शुरूआती दौर में समाज के लोगों द्वारा ताने भी सुनने पड़े। लेकिन बुलंद हौंसलों के साथ आगे बढ़ते हुए आज इनका कारवां काफी बढ़ा हो गया है। देश के कई राज्यों में भी इस अभियान को चलाते हुए इस कार्यक्रम को आगे बढ़ा रहे हैं। डॉ. धर्मेंद्र कुमार का जज्बा निश्चित ही पर्यावरण संरक्षण के लिए मील का पत्थर साबित हो रहा है। जरूरत इस बात की है कि इनके इस जज्बे को सरकार का भी सहयोग मिले ताकि इनके इरादे और मजबूत हो सकें।

इनका मानना है कि यदि पर्यावरण को संरक्षित करने की दिशा में ध्यान नहीं दिया गया तो इस विकसित मानव सभ्यता के सामने गंभीर संकट पैदा हो जाऐगा। फिर क्या था उन्होंने पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण नीम, पीपल और तुलसी के पौधों को हर जगह घूम-घूम कर बांटना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं वह लोगों को इन पौधों के महत्व से भी परिचित करा रहे हैं। उनका कहना है कि नीम,

पीपल और तुलसी के पौधे पर्यावरण को तो संरक्षण प्रदान करते ही हैं मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए भी काफी महत्वपूर्ण हैं। इन पौधों से समस्त दवाईयों का निर्माण हो सकता है। डॉ. धर्मेंद्र कुमार को वनस्पति और औषधियों का भरपूर ज्ञान है।

डॉ. धर्मेंद्र कुमार की उपलब्धियां

डॉ. धर्मेंद्र कुमार अनेक देशों में अभियान चलाकर पर्यावरण संरक्षण की अलख जगा रहे हैं। लाखों की संख्या में पौधों का रोपण कर चुके हैं। साथ ही लोगों को पेड़-पौधे रोपित करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। इनके इस अतुलनीय योगदान के लिए कई देशों में अंतर्राष्ट्रीय मंच से सम्मानित हो चुके हैं। वर्तमान में 06 देशों- भारत, नेपाल, बांगलादेश, श्रीलंका, भूटान, इंडोनेशिया के साथ समन्वय स्थापित कर पर्यावरण संरक्षण हेतु कार्य कर रहे हैं। इन्हें डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम नेशनल अवार्ड-2021 से भी सम्मानित किया गया है।

प्रेरणा देता है ऐसे कर्मयोगी का सम्मान

डॉ. धर्मेंद्र कुमार एक कर्मयोगी हैं, जो निस्वार्थ भाव से समाज में प्रकृति संरक्षण का अलख जगाकर निश्चित तौर पर एक प्रेरणादायी कार्यो को जन-जन तक पहुंचा रहे हैं। ऐसे कर्मयोगी सेवाभावी को सम्मान मिलना हमें प्रेरणा प्रदान करता है। जब

डॉ. धर्मेन्द्र द्वारा बक्सवाहा नैनागिरी में आयोजित मंथन शिविर में हिन्दुस्तान के पर्यावरण प्रेमी सम्मिलित हुये

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार को वनस्पति और औषधियों का भरपूर ज्ञान

पहली बार मैं इनसे मिली तो इनके कामों से काफी प्रभावित हुई।

बक्सवाहा जंगल बचाओ अभियान में भूमिका

बक्सवाहा जंगल बचाओ अभियान की शुरुआत डॉ. धर्मेंद्र कुमार द्वारा हुई है। जिन्होंने अलग-अलग राज्यों से पर्यावरण प्रेमियों को एक समूह में जोड़ा और बक्सवाहा जंगल बचाओ अभियान को एक नई दिशा दी। जिसका नतीजा यह निकला कि कोर्ट ने भी अक्टूबर-2021 में बेजुबान पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं के हक में फैसला सुनाया। जिससे सभी पर्यावरणप्रेमियों में खुशी की लहर जाग उठी। उन्होंने कहा कि प्रकृति, पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन करना हम सभी की जिम्मेदारी है। हम सभी को सहभागिता करनी चाहिए और प्रकृति के हरित कवच को बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक पौधरोपण के साथ ही हरे पेड़ों

नेपाल लुम्बिनी शहर में डॉ. धर्मेंद्र कुमार की अध्यक्षता में दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण योद्धा सम्मान एवं विचार मंथन शिविर का आयोजन किया गया।

और वृक्षों को काटने से रोकना चाहिए। क्योंकि हरे पेड़ पौधे प्रकृति में ऑक्सीजन की प्राकृतिक फैक्ट्री हैं और हम सभी जल, वायु, जंगल और जमीन के संरक्षण और संवर्द्धन हेतु सहभागी बनें तो हम सभी के साथ साथ समस्त जीव-जंतुओं के जीवन का भी अस्तित्व बना रहेगा।

अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण योद्धा सम्मान-2021 से सम्मानित

दिनांक 27 व 28 नवंबर 2021 को नेपाल के लुम्बिनी शहर में डॉ. धर्मेंद्र कुमार की अध्यक्षता में दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण योद्धा सम्मान एवं विचार मंथन शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें पर्यावरण योद्धाओं का सम्मान किया गया। इस शिविर में ग्रीन यूथ ऑफ लुम्बिनी नेपाल, कमला जलाधार संरक्षण अभियान जनकपुरधाम नेपाल, दीदी जी फाउन्डेशन जैसी अनेक संस्थान की मौजूदगी रही। सहविचार मंथन शिविर में भारत, नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंका, भूटान, इंडोनेशिया आदि देशों के लगभग 150 प्रकृति पर्यावरणप्रेमी मित्र शामिल हुए और पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन के क्षेत्र में विशेष कार्य करने वाले प्रकृति पर्यावरणप्रेमियों को अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण योद्धा सम्मान-2021 से सम्मानित किया गया। डॉ. धर्मेंद्र कुमार को भी अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण योद्धा सम्मान-2021 से सम्मानित किया गया।

Justice G.N. Ray

Future of the Newspapers

LET ME CONGRATULATED THE MAKAHNLAL CHATURVEDI NATIONAL UNIVERSITY of Journalism and Communication for organizing a seminar on the theme that has global relevance today. Anyone remotely connected with the media world is concerned about the future of newspapers in the face of ongoing rapid transition from print media to online media. The Indian press, being 228 years old, is also not unaffected from this global trend.

Today, when we are facing ongoing rapid transformation from print media to online media, there is a big and natural question mark about the future of print media. However, even before we discuss the issue in depth, I may state with confidence they the print media and newspaper are here to stay many more years and no e-communication module has the capacity of replace it.

Technological break-through

The technological break-thriugh in printing has breathed in unforeseen structural in the set-up of print media. It has not only helped in better designing, layout and more attractive presentation with improved color scheme in the printing of the newspapers but has also made it feasible and economically viable to print more multi-edition copies faster and at lesser cost with better get-up and attractive type, thus enabling the press to cater to more readers stationed at different locations. The developing telecommunication services and transport facilities have also facilitated news reporting even from remote and forlorn places and quick transmission and dissemination of news resulting in prompt and wider circulation of the newspapers with better news contents.

These development in technology, coupled with the growth in the newspaper readers on account of higher literacy level and higher per capita income, have led to an enviable growth in the number of newspapers and their circulation. Daily circulation of some of the national level newspapers in enviable even globally. Formation of linguistic states paved the way for development of language press in various linguistic region which, in turn, has made significant contributions in the developmental programs of the government.

Further, the status of language press in now well recognized and considered a t par with the English newspapers, As a matter of fact, small newspapers, published in local regional language and dialects in remote areas in India, are working as conduit between local rural and urban population in other parts of the country unfolding not only rich culture and heritage of the region but also various problems in each area.

Wide option

Today's readers of the print media have a wide variety of options to choose from the publications devoted to specialized subjects because of diverse information easily available on account of technological

development. With a click of the mouse, news an happening in every part of the globe are before you.

India is the world's largest democracy. In a democracy, the media has a responsibility to inform, educate, guide and mould the society. The Indian media is thus responsible towards about 1.1 billion people of the county. India's newspaper evolution is nearly unmatched in the world press history. India's press is a metaphor for its advancement in the globalised world.

The first attempt to start a newspaper in India was made in Kolkata. On January 29,1780 the first Indian newspaper, the Bengal Gazette, popularly knows as Hicky,s Gazette, consisting of two pages, twelve inches by eight inches in size was published. During the later half of the 19th century, Anglo India Press established firm foundation in India.

In 1961, there were 11 Urdu newspapers and 8 Hindi newspapers. By 1870, the press in India language newspapers was growing rapidly. There were about sixty-two India language newspapers in Bombay, about sixty in North West Province, Ouch and Central Provinces, Some twenty-eight in Bengal, about nineteen in Madras [Tamil, Telugu, Malayalam and Hindustani]. There were about 1,00,000 readers and the highest circulation of any one newspaper was about 3000. Today, the number of newspaper has grown to 99 million copies daily. India newspapers sales increased by 11.2 percent in 2007 and by 35.51 percent in the five yeare period.

Journalist of a different kind

A glorious chapter of Indian newspapers was unfolded in the later years of the 19th century which revealed theta the newspapers were consistently reporting on challenges ahead of the nation. Instead of reporting societal events of the Britishers and feudal Indian society, the newspapers focused on news and write-ups on diverse social and political concerns and problems. The country thus says the birth of a different kind of journalism, a dedicated journalism which stood for social reforms and public welfare, and creating marriage and sati.

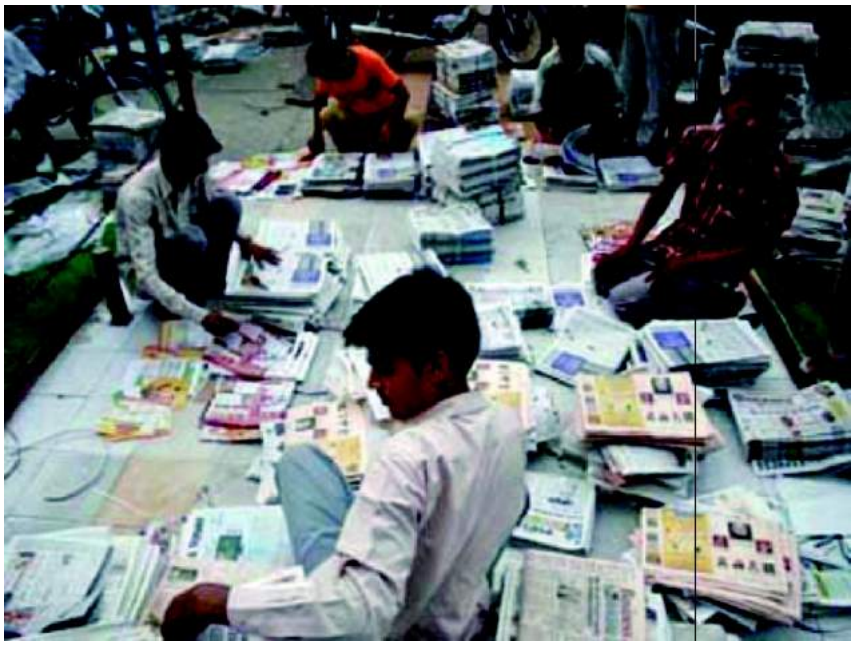

The press gradually became the most powerful weapon for freedom movement under the leadership of towering personalities like Tikal, Gokhale, Gandhiji and others who stood for progressive journalism and liberal notions and believed in the strength of the press to mould public opinion, to shape the destiny of the nation and to safeguard the rights and civil liberties of its citizens.

From 1990s, India has witnessed an explosion in electronic media and online news services. Media has acquired such great control on the mind of the masses that in now controls and shapes the liking, disliking and interest in different segments of news to a considerable extant. Compared to the print media, electronic media has grown faster in view of the advantages of visual impact enjoyed by it.

The strong belief of our freedom fighters that pen is mightier than sword, and the power of their pen can challenge the political establishment directed the Indian journalism with a sense of purpose that never weakened and holds ground till date. As a result, Press always enjoyed popular support with respect and despite various lamentable aberrations in the functioning of media, even now media in India has strong popular

supports, The liberty which it enjoys today is founded on such popular support of the civil society.

National political struggle and advocacy of social reforms and emancipation in the years before independence contributed to the creation of the corestrenght of the press in free India. This included independent functioning, resistance to state oppression and censorship and firm commitment to free speech and expression.

The Indian press, more than two centuries old is known for its role in the freedom struggle, fight for social reform and campaigns for public awareness. Unfortunately, long cherished values of social and political outlook are now facing a losing battle on account of onslaught of modern values governed by technology and competition and dictated by market forces for deriving higher and higher profit like a commercial venture. New modes of communication are making their presence felt even in the remotest corners of the world. The new system and functioning have reshaped the focus, approach and priorities of media Therefore, a new conflict in markedly evident in media world-a conflict between value system of yesteryears and marketism, a conflict whether journalism is a service and a profession or a business and industry.

The 2007 Annual Report by Price Waterhouse Coopers (PWC) on the Indian Entertainment and Media Industry (E & M) titled 'A Growth Story Unfolds' projects that the print media will grow at a 13 per cent compound annual growth rate from 85 billion to 232 billion in 2011 at a compound growth rate of 18 per cent. The figures reflect the achievements of the Indian press especially during the last two decades.

Wide-ranging control

From 1990s, India has witnessed an explosion in electronic media and online news services. Media ha acquired such great control on the mind of the masses that it now controls and shapes the likin, disliking and interest in different segments of news items to a considerable exeunt, Compared to the print media. electronic media has grown faster in view of the advantage of visual intact enjoyed by it.

The Indian press is going through transformation because of changes occurring in today's polity of the country on account of rapid socio-economic strides. Liberalization and competition from the electronic media are impelling the print media to adapt to new technologies with more professional outlook and sensitivity to the market forces, Today, the structure of India's print media maintains a product line which is amazingly a diverse array of languages, management set-up, topics and news contents.

The rapid challenges being faced today and to be faced in near future need dynamism and quick adaptation for the growth and effective survival of print media. The newspapers today are compelled to delicately balance the twin challenges, namely, how best they can adapt to and gain from digital ion and advertising revenue; and how to play its role as fourth estate. Unfortunately, media is failing to play its role as fourth estate effectively. What is witnesses in today's media scenario is that instead of making newspaper rich in news contents and addressing serious issues for better governance of the country and improve socio-economic disparities, the media, driven by market forces and in an unending urge to make more profits, is indulging is trivialisation, sensationalistion and tainted corporatate communication. It is interesting to note that media is cleverly attempting to keep under wrap such deplorable dosing, by covertly underplaying trivialization of news contents and biased news and views subserving interests of advertisers and corporate house in order to remain gainfully floated with market forces. Such clever manipulation has been aptly described as feeding the readers spinach with the ice-cream; distribution and advertising revenue; and how to play its role as fourth estate. Unfortunately, media is failing to play its role as fourth estate effectively. What is witnesses in today's media scenario is that instead of making newspaper rich in news contents and addressing serious issues for better governance of the country and improve socio-economic disparities, the media, driven by market forces and in an unending urge to make more profits, is indulging is trivialisation, sensationalistion and tainted corporatate communication. It is interesting to note that media is cleverly attempting to keep under wrap such deplorable dosing, by covertly underplaying trivialization of news contents and biased news and views subserving interests of advertisers and corporate house in order to remain gainfully floated with market forces. Such clever

manipulation has been aptly described as feeding the readers spinach with the ice-cream;

The changes in technology and market place are shaping the growth and development of print media. in India, almost all big newspapers are accessible through the internet thereby providing up-to-date news and information no only relating to India but to other parts of the globe as well. Today's readers are not satisfied with traditional news contents but something more giving insight to what is happening all around.

Unfortunately, in their anxiety to get more of more readers and particularly more and more advertisers and corpatate sector as client, the print media is, by and large, running to be a commercial enterprise and the newspaper as a commodity Journalism in today's media scenario appears more as a profession than a mission. the print media is consciously oblivious to its reals fourth estate. To say the least, this trend is not only unfortunate but deserves to be condemned by civil society in no uncertain terms.

Corporate house-newspapers owners

Today's media, particularly big national level newspapers, are mostly owned by the corporate house, These newspapers, barring a few, are running the newspapers with an ain to derive more and more profits like commercial enterprises. More and more revenue from corpatate house and commercial venture being targeted, news contents and articles have orientation suiting the corpatate house and business community. The newspapers very often covertly lobby the pursuits of big corporate house advertisements. The problems, concerns and intesta of the weaker segment of the society are inappropriately projected and serious national issues are not addressed properly. The center for Media Studies, in its study of media scenario of 2004, very appropriately indicated that the overall reach of all mass media in the country individually and even

collectively in not expanding, although individually the media is registering growth. Teh un-reached sections, being at the button of economic pyramid, are not the target of mass media both for reach as well as for concerns.

The emergence of big media house and cooperation of media is heading fast fast towards monopoly in the media. This is a matter of concern. The small and medium newspapers, particularly regional newspapers, with low circulation and operating in remote rural areas are facing acute financial crisis and their servile is at stake because of rapid spreading of wings by new papers covering large number of cities and districts. The elimination of the rivals at any cost, through competition and acquisition, is the age-old device. In the interest of body polity of Indian democracy consisting of different segments in the society, sources of information should also contain voices and concerns of all segments of body polity. To achieve this, ownership of media should essentially belong to such persons or institution who would be concerned with the vice of all segments of society. The other news of the other side of the news and views will not be available and dissemination of only the specified information will be subtly ensuted if media suffers from monopoly and corporatistation. Such monopoly and corporatisation. Such monopoly in media is inherently not good for indian democracy.

concerns of all segments of body polity. To achieve this, ownership of media should essentially belong to such persons or institution who would be concerned with the vice of all segments of society. The other news of the other side of the news and views will not be available and dissemination of only the specified information will be subtly ensuted if media suffers from monopoly and corporatistation. Such monopoly and corporatisation. Such monopoly in media is inherently not good for indian democracy.

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान वर्ष 1998 से सतत् रूप से संचालित हो रहा है। इस संस्थान से अध्ययन कर छात्र-छात्राएं प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अच्छे पदों पर पदस्थ हैं। साथ ही साथ शासकीय पद पर आसीन होकर इस संस्थान को गौरवान्वित कर रहे हैं।

: विषय :

मास्टर ऑफ आर्ट जर्नलिज्म (2 वर्ष)

प्रवेश प्रारंभ

संपर्क सूत्र

विजया पाठक (संचालक) - 9826064596

अर्चना शर्मा - 9754199671

कार्यालय - कार्पोरेट कार्यालय - एफ 116/17, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र.

संस्थान - 28, सुरभि विहार कालोनी, कालीबाड़ी, बी.डी.ए. रोड, भेल, भोपाल, म.प्र.

SAWARNA COSMETICS

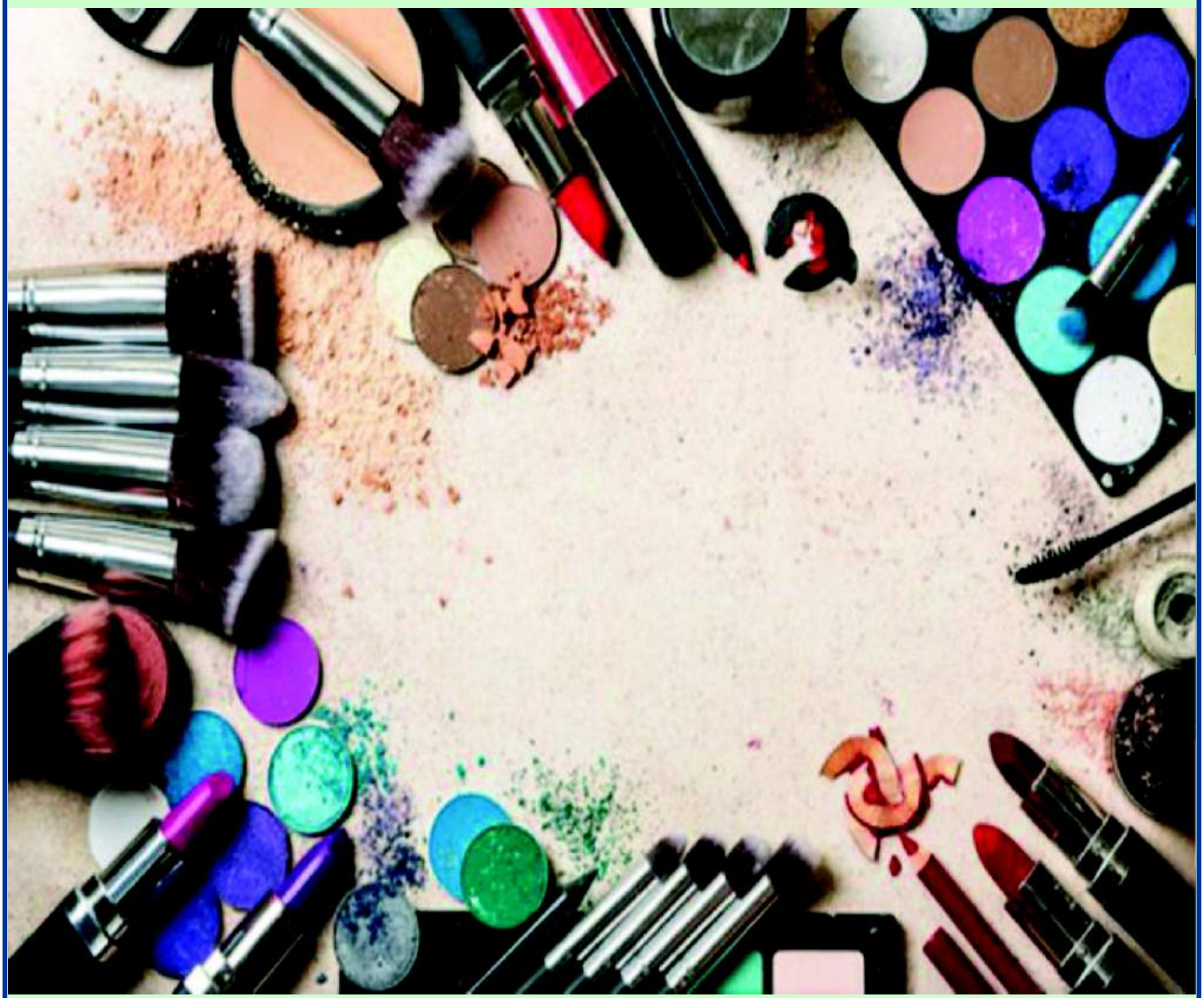

SHOP NO. 101/152, NEW MARKET,
BHOPAL, M.P. 462016

हमारे किसान
हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता

मध्यप्रदेश शासन

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

किसानों के लिए मध्यप्रदेश सरकार के प्रयास

- कृषि अधोसंरचना विकास फंड में मध्यप्रदेश देश में सबसे आगे। अधोसंरचना विकास के लिए आत्मनिर्भर कृषि मिशन का गठन।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के साथ किसान कल्याण योजना में प्रदेश के किसानों को ₹ 4000 प्रति वर्ष देने का निर्णय। प्रदेश के 78 लाख पात्र किसानों को लगभग ₹ 3200 करोड़ की राशि का भुगतान होगा।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में कुल ₹ 8646 करोड़ का भुगतान।
- 16 लाख किसानों से 1 करोड़ 29 लाख मीट्रिक टन गेहूं का रिकॉर्ड उपार्जन, ₹ 27000 करोड़ से अधिक का भुगतान।
- पिछले 8 माह में 2 करोड़ 10 लाख किसानों को विभिन्न योजनाओं में ₹ 46000 करोड़ से अधिक का भुगतान।
- उर्वरकों का अग्रिम भण्डारण।
- पिछले 8 माह में लगभग ₹ 8000 करोड़ से अधिक की सिंचाई परियोजनाओं की स्वीकृति।
- 2002-03 में प्रदेश का कुल सिंचित रकबा मात्र 7 लाख 50 हजार हेक्टेयर था, जिसे 15 साल में बढ़ाकर 40 लाख हेक्टेयर तक कर दिया।
- 15 वर्षों में सिंचाई बजट ₹ 1005 करोड़ से बढ़ाकर ₹ 10,928 करोड़ किया गया।
- तीन वर्षों में 1000 नये "कृषि उत्पादक संगठन" का होगा गठन।
- शून्य ब्याज दर पर ऋण योजना वर्ष 2020-21 में पुनः प्रारंभ।
- मंडी नियमों में ऐतिहासिक सुधार। मंडी टैक्स 1.5% से घटाकर 0.5% किया गया।
- सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए ₹ 800 करोड़ जारी।

"किसान मेरे लिये भगवान हैं,
हम उनकी सेवा में
कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।"

– शिवराज सिंह चौहान

सशक्त किसान, समृद्ध खेती, आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020